योगविद्या

वर्ष 7 अंक 5
मई 2018
सदस्यता डाकखर्च – रु100

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2018

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 60 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर : सत्यम् वाटिका

अन्दर के रंगीन फोटो : 1: गंगा दर्शन; 2-3: 2018 भारत योग यात्रा - बेंगलुरु एवं मुम्बई; 4: होली

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

समग्र योग

योग के चार मुख्य मार्ग हैं–कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग तथा ज्ञानयोग। जैसे एक ही कमीज चार अलग आदमियों पर ठीक नहीं बैठ सकती, वैसे ही एक मार्ग सभी व्यक्तियों के लिए उपयुक्त नहीं हो सकता। तथापि सभी मार्गों का लक्ष्य एक ही है–परम सत्य की प्राप्ति।

योग मार्ग पर चलने से पूर्ण व्यक्तित्व का विकास होना चाहिए। एकांगी विकास अनुशंसनीय नहीं है। इसलिए हर साधक को समग्र योग का अभ्यास करना चाहिए। प्रत्येक मानव सोचता है, अनुभव करता है तथा कर्म करता है। इसलिए उसे अवश्य ही अपनी बुद्धि, भावना और कर्मों का परिष्कार करना चाहिए। तभी उसका सर्वांगीण विकास हो पाएगा। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी साधना के आधार के रूप में कोई एक योग मार्ग अपनाना चाहिए और उसके साथ अन्य सभी योग मार्गों का संयोजन करना चाहिए। इसे ही समग्र योग कहते हैं।

–श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर-811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद-121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 7 अंक 5 · मई 2018
(प्रकाशन का 56 वाँ वर्ष)

विषय सूची

4 प्रत्याहार की कला
10 सोयेगा सो खोयेगा, जागेगा सो पायेगा
15 प्राणायाम का महत्त्व
20 आत्मसमर्पण
31 योग और संस्कृति
38 धारणा में व्यवधान
43 सत्यम् वाणी
52 अनुशासन और सुसंस्कार

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

प्रत्याहार की कला

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

श्रीमद् भगवद्गीता में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को प्रत्याहार के विषय में समझाते हुए कहते हैं–

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता॥2.58॥

अर्थात् जैसे कछुआ सब ओर से अपने अंगों को समेट लेता है, वैसे ही जब मनुष्य इन्द्रिय-विषयों से इन्द्रियों को सब प्रकार से हटा लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।

इन्द्रियाँ इच्छाओं का स्थूल रूप हैं। देखने की इच्छा ही वास्तविक नेत्र है, सुनने की इच्छा ही वास्तविक कान। स्थिर और गत्यात्मक, इन्द्रियों की ये दो अवस्थाएँ होती हैं। जब कोई इच्छा सक्रिय होने लगती है, तब इन्द्रियाँ क्रियाशील हो जाती हैं। यह गत्यात्मक अवस्था है। ज्यों ही इच्छा की पूर्ति होती है, इन्द्रियाँ सन्तुष्ट होकर वापस सिमट जाती हैं। यह स्थिर या निष्क्रिय अवस्था है।

इन्द्रियाँ मन का विस्तार मात्र हैं। जिस प्रकार नदियाँ समुद्र का सम्भरण करती हैं और उनके बिना समुद्र का अस्तित्व नहीं हो सकता, उसी प्रकार इन्द्रियाँ मन का पोषण करती हैं और उनके बिना मन के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। यदि आपने इन्द्रियों को संयमित कर लिया तो समझिए कि मन नियन्त्रित हो गया। इन्द्रियाँ और मन एक ही हैं।

मन इन्द्रियों का संगठित समूह है। यह इन्द्रियों से उच्चतर शक्ति है। जिस प्रकार मंत्री राजा की आज्ञा का पालन करता है, उसी प्रकार पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ मन के निर्देशानुसार कार्य करती हैं। मन में उत्पन्न भोजन करने की इच्छा, जीभ, दाँत एवं उदर के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। मन की घूमने-टहलने की इच्छा पैरों के माध्यम से प्रकट होती है। यदि आप मन को नियन्त्रित कर लें तो आप सभी इन्द्रियों को नियन्त्रित करने में सक्षम हो जाएँगे।

प्रत्याहार

मन मुख्य सेनापति है और इन्द्रियाँ उसके सैनिक। मन के सहयोग के बिना वे कुछ भी नहीं कर सकतीं। यदि आप मन को इन्द्रियों से अलग कर लें तो अपने आप इन्द्रियों का प्रत्याहार हो जाएगा। जब आप किसी रोचक पत्रिका को पढ़ने में तल्लीन होते हैं तब आप अपने मित्र की बुलाने की आवाज को भी नहीं सुनते। आप यह

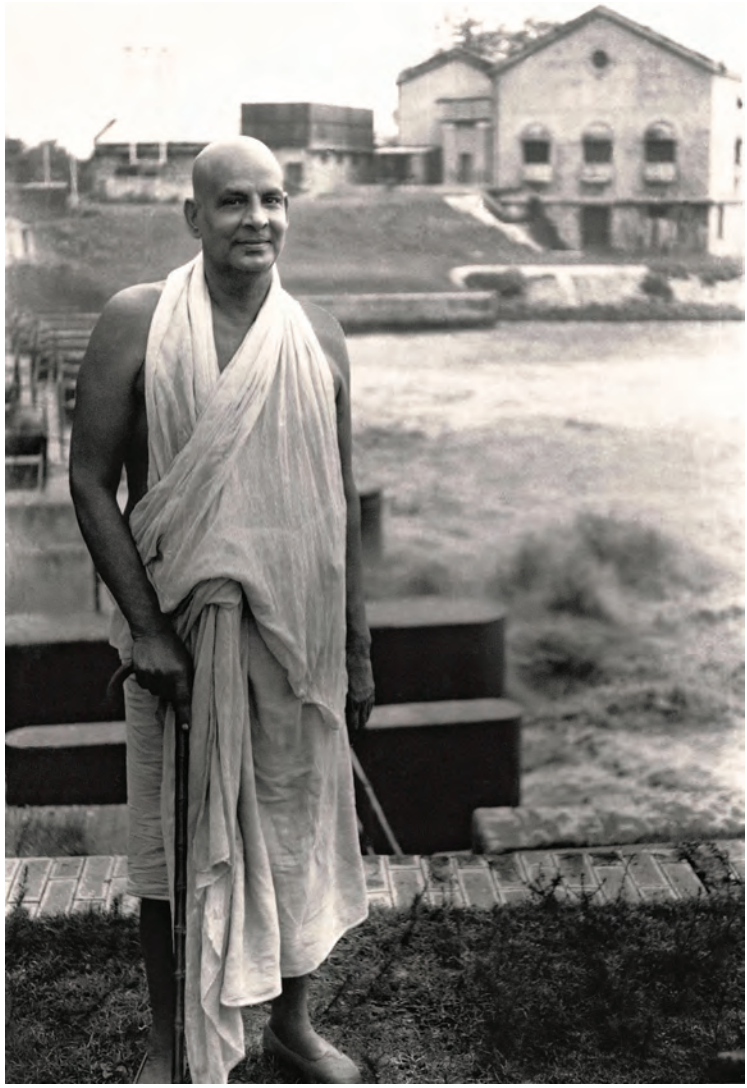

नहीं जानते कि घण्टाघर की घड़ी ने पाँच बजा दिए हैं। ऐसा प्रत्येक व्यक्ति का अनुभव है। उस समय मन कहीं दूर होता है, तब वह श्रवण-इन्द्रिय से सम्बद्ध नहीं होता। इसी तरह, आँखें खुली रहने के बावजूद यदि मन अन्यत्र विचरण कर रहा हो तो आप अपने सामने की वस्तु को भी नहीं देख सकेंगे।

प्रत्याहार का तात्पर्य इन्द्रिय-विषयों से इन्द्रियों के निवर्तन से है। प्रत्याहार इन्द्रियों की बहिर्गामी प्रवृत्तियों पर रोक लगाता है। तब इन्द्रियाँ मन में अन्तर्निहित

होने लगती हैं। जब साधक प्रत्याहार में अच्छी तरह स्थित हो जाता है तब इन्द्रियाँ पूर्णत: संयमित हो जाती हैं।

प्रत्याहार के अभ्यास में मन और इन्द्रियों, दोनों को नियन्त्रित करना होता है। जब इन्द्रियाँ विषय-वस्तुओं का त्याग कर देती हैं, तब वे मनोसामग्री का रूप ले लेती हैं और मन में समाहित हो जाती हैं। यही प्रत्याहार है। जब इन्द्रियों को उनके विषयों से निवर्तित किया जाता है तो उसे इन्द्रिय-प्रत्याहार कहा जाता है। जब मन इन्द्रियों से अलग हो जाता है तो यह मन:प्रत्याहार कहलाता है।

प्रत्याहार की विधियाँ

जब आँखें सुन्दर वस्तुओं की ओर भागती हैं तब उन्हें निवर्तित करके अपने इष्ट के चरण-कमलों में लगाइए। जब कान सांसारिक ध्वनियों और धुनों की ओर भागें तब उन्हें भगवान के नाम सुनने का प्रशिक्षण दीजिए। गन्ध, स्वाद एवं स्पर्श से निवर्तन हेतु तो आपको अपने मन को ही नियन्त्रित करना होगा। आप चीनी, नमक, मिर्च, स्वादिष्ट भोजन, सुगन्धित द्रव्य एवं कोमल शय्या का अवश्यमेव त्याग करें।

इन्द्रिय-अनुशासन एक अति महत्त्वपूर्ण विषय है। प्रत्येक इन्द्रिय का सावधानीपूर्वक अवलोकन करें और उपवास, मौनपालन, त्राटक, ब्रह्मचर्य, इन्द्रिय-विषयों के त्याग, आत्मसंयम तथा प्रत्याहार जैसे सशक्त उपायों द्वारा उसे नियन्त्रित करें। इन्द्रियों के नियन्त्रण का तात्पर्य मनोनियन्त्रण से है। मन के प्रत्यक्ष सहयोग के बिना इन्द्रियाँ स्वतन्त्र रूप से कुछ भी नहीं कर सकतीं। ब्रह्मचर्य जननेन्द्रिय को, मौनपालन वाणी-तन्त्र को तथा त्राटक का अभ्यास नेत्रों को नियन्त्रित करता है।

जब आप सड़क पर चल रहे हों तो बन्दर की तरह इधर-उधर न देखें। अपने पैरों पर दृष्टि रखें तथा आगे बढ़ते जाएँ। जब आप घर पर होते हैं तो त्राटक का अभ्यास करें। अपने नेत्रों को सदा एक बिन्दु पर एकाग्र करें। यह अभ्यास नेत्रों के नियन्त्रण में सहायक होगा। सिनेमाघरों और नाचघरों में न जाएँ। वैसे स्थानों में भी न जाएँ जहाँ अश्लील गायन और आमोद-प्रमोद होता हो। मोटी, खुरदुरी चटाई पर सोएँ। मुलायम गद्दे को हटा दें। सुगन्धित द्रव्य का उपयोग न करें। प्रत्येक इन्द्रिय पर दृष्टि रखें और यदि किसी में जरा भी पथभ्रष्ट होने की प्रवृत्ति नजर आए तो तत्काल उसे नियन्त्रित करें। जो अपनी इन्द्रियों को अनुशासित कर लेता है वह दृढ़ संकल्प-शक्ति और मानसिक शान्ति को प्राप्त कर लेता है। वह अच्छी तरह ध्यान का अभ्यास कर सकता है। वह अत्यधिक सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है। वह भौतिक जीवन के साथ-साथ आध्यात्मिक जीवन में भी सफलता प्राप्त करता है। इन्द्रिय-अनुशासन के बिना कोई भी उच्चतर साधना सम्भव नहीं।

जिस प्रकार बैलगाड़ी का चालक अपने उतावले बैलों को रोककर जुए से लगाए रखता है, उसी तरह प्रत्याहार के अभ्यास में आपको बहिर्मुखी इन्द्रियों को

विषयों की ओर भागने से बार-बार रोककर मन को अपने ध्यान के बिन्दु पर केन्द्रित करना होगा। आपको अपनी इन्द्रियों को धीरे-धीरे नियन्त्रित करने की कला सीखनी होगी। कुछ साधक अपनी इन्द्रियों को बलपूर्वक नियन्त्रित करने का प्रयास करते हैं। यही कारण है कि उन्हें यदा-कदा परेशानियों का सामना करना पड़ता है। आपको एक-एक करके इन्द्रियों का निवर्तन करना चाहिए। सर्वप्रथम सबसे अशान्त इन्द्रिय पर ध्यान दीजिए और उसके प्रत्याहार का अभ्यास शुरू कीजिए। तदुपरान्त आप दूसरी इन्द्रिय को लीजिए। यदि आप सभी इन्द्रियों को एक साथ व्यवस्थित करने का प्रयास करेंगे तो सफल नहीं होंगे। यह अति कठिन कार्य होगा। आप बहुत थकावट का अनुभव करेंगे।

साधक को इन्द्रियों की प्रतिक्रिया से सावधान रहना चाहिए। यदि वह सतर्क नहीं है या अपनी साधना में नियमित नहीं है या उसके वैराग्य में कमी आ जाती है तो इन्द्रियों की प्रतिक्रिया प्रारम्भ हो जाती है तथा वे और अधिक उग्र हो जाती हैं। तब उन्हें नियन्त्रित करना कठिन हो जाता है और साधक का निराशाजनक पतन होता है।

प्रत्याहार में निपुण होने के लिए साधक को घोर प्रयास करना पड़ता है। प्रत्याहार में सफलता प्राप्त करने हेतु पूर्ण वैराग्य का होना अनिवार्य है। कुछ वर्षों के कठोर एवं अनवरत संघर्ष के बाद ही आप सफल हो सकेंगे। प्रत्याहार में सफल होने पर धारणा स्वत: होने लगती है। सामान्यत: लोग प्रत्याहार का अभ्यास किए बिना ही धारणा का अभ्यास करने लगते हैं। धारणा में उनकी असफलता का यही कारण है। प्रत्याहार अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। प्रत्याहार के अभ्यास द्वारा इन्द्रियों का पोषण समाप्त हो जाता है। वे दुबली और क्षीण हो जाती हैं। विषयों के निकट सम्पर्क में आने के बावजूद भी वे उत्तेजित नहीं होतीं। वे उन सर्पों के समान हो जाती हैं जिनके विष-दन्त निकाल दिए गए हैं। अब वे कोई हानि नहीं पहुँचा सकतीं।

प्रत्याहार के अभ्यास में त्याग और वैराग्य अत्यधिक सहायक होते हैं। यदि आप स्वेच्छापूर्वक मन को इन्द्रियों से जोड़ सकें और अलग कर सकें, तो इसका तात्पर्य यह है कि आपने मन पर काफी नियन्त्रण प्राप्त कर लिया है। अब आप मन की बहिर्गामी वृत्तियों को किसी भी क्षण रोक सकते हैं। प्रत्याहार आन्तरिक आध्यात्मिक जीवन का प्रवेश द्वार है। प्रत्याहार में पूर्णता प्राप्त करने के बाद धारणा और ध्यान के अभ्यास आसानी से होने लगते हैं। जिसने प्रत्याहार में सफलता प्राप्त कर ली है वह अपने मन को बहुत लम्बे समय तक एकाग्र कर सकता है। वह कभी भी, कहीं भी, यहाँ तक कि भरे बाज़ार के शोरगुल में भी एकाग्रता का अभ्यास कर सकता है। वह ज्यों ही ध्यान के लिए बैठेगा, त्यों ही उसकी इन्द्रियाँ निवर्तित हो जाएँगी। बाह्य ध्वनियों से उसे कोई बाधा नहीं पहुँचेगी।

साधना की अवधि में लोगों से अधिक मिलना-जुलना न करें। अधिक भोजन, अधिक शयन, अधिक बात-चीत या अधिक घूमना-फिरना भी न करें। इन पाँच

निषेधों का पालन करें। अधिक मिलने-जुलने से मन में अशान्ति उत्पन्न होगी। अधिक बात-चीत करने से चित्त-विक्षेप तथा अधिक घूमने-फिरने से थकावट एवं कमजोरी होगी। अधिक खाने से आलस्य और उनींदापन उत्पन्न होगा।

आपकी यात्रा तभी सुरक्षित हो सकती है जब आपके घोड़े की लगाम नियन्त्रण में हो। इन्द्रियाँ घोड़ों के समान हैं। यदि वे नियन्त्रण में हों तो मुक्ति की ओर जाने वाले मार्ग पर आपकी यात्रा सुरक्षित एवं सुगम हो जाएगी। मन की सहायता के बिना इन्द्रियाँ कुछ नहीं कर सकतीं। मन ही उनका स्वामी और अधिनायक है। इन्द्रियों के नियन्त्रण का तात्पर्य मन के नियन्त्रण से ही है। विचारों के नियन्त्रण से मन एवं इन्द्रियों का भी नियन्त्रण हो जाता है। इसलिए विचारों का नियन्त्रण अवश्य होना चाहिए। यह सब के लिए अभीष्ट है। ऐसा करने से असीम आनन्द और शाश्वत जीवन की प्राप्ति होगी।

योगाभ्यासियों को यम, नियम, आसन एवं प्राणायाम में थोड़ी सफलता प्राप्त करने के बाद ही प्रत्याहार का अभ्यास आरम्भ करना चाहिए। प्राणायाम के अभ्यास के बाद प्रत्याहार स्वत: होने लगता है। श्वसन के संयम द्वारा जब प्राण-शक्ति

नियन्त्रित होने लगती है, तब इन्द्रियाँ अपने-आप क्षीण हो जाती हैं। अब अपने विषयों के सम्पर्क में आने के बाद भी वे सक्रिय नहीं होतीं।

प्रत्याहार के लाभ

प्रत्याहार निश्चय ही एक कठिन अभ्यास है। प्रारम्भ में इसमें मन नहीं लगता किन्तु बाद में यह अति रुचिकर हो जाता है। इस अभ्यास में सफलता हेतु पर्याप्त धैर्य एवं अध्यवसाय की आवश्यकता होती है। निरन्तर अभ्यास से आप दृढ़ इच्छा-शक्ति प्राप्त करेंगे। प्रत्याहार के अभ्यास के दौरान इन्द्रियाँ जंगली साँडों की तरह बार-बार अपने विषयों की ओर भागेंगी। आपको उन्हें बार-बार निवर्तित करके अपने मन को ध्यान के बिन्दु पर एकाग्र करना होगा। प्रत्याहार में अच्छी तरह स्थित योगी उस युद्ध के मैदान में भी शान्तिपूर्वक ध्यान कर सकता है जहाँ निरन्तर तोपों की गड़गड़ाहट सुनाई पड़ रही हो और चारों तरफ मार-काट मच रही हो।

सन्त तिरुवल्लुवर की पत्नी को प्रत्याहार के अभ्यास में विशिष्ट दक्षता प्राप्त थी। वे पानी से भरे हुए बर्तन को अपने सिर पर लेकर बड़ी भीड़ में भी घूम सकती थीं। बर्तन से जल का एक बून्द भी नहीं छलकता था। प्रत्याहार में निपुण साधक अपने बिस्तर पर लेटते ही क्षण-भर में गहरी निद्रा में डूब जाता है। प्रत्याहार में दक्ष होने के कारण नेपोलियन भी ऐसा कर पाता था।

शुकदेव को प्रत्याहार में आश्चर्यजनक दक्षता प्राप्त थी। एक बार राजा जनक ने अपने राजमहल में उनकी परीक्षा ली। राजा ने उनके चित्त को विक्षिप्त करने के लिए राजमहल के चारों ओर संगीत एवं नृत्य के समारोह का आयोजन किया। तरह-तरह के मनोरंजन की व्यवस्था की गयी। शुकदेव से अनुरोध किया गया कि वे दूध से भरे हुए प्याले को अपने हाथ में लेकर तीन बार राजमहल का चक्कर लगायें तथा इस बात का ध्यान रखें कि दूध की एक बून्द भी जमीन पर न गिरे। शुकदेव को अपने प्रयास में पूरी सफलता मिली क्योंकि वे प्रत्याहार में पूर्णतः स्थित थे। कोई भी दृश्य अथवा ध्वनि उनके मन को विक्षिप्त न कर सकी।

प्रत्याहार में सफलता साधक के पूर्व जन्मों के संस्कारों के सामर्थ्य पर निर्भर करती है। जिसने अपने पूर्व जन्मों में यत्नपूर्वक यम, नियम, आसन, प्राणायाम एवं प्रत्याहार का कुछ हद तक अभ्यास किया है, उसे इस जीवन में कम समय में ही प्रत्याहार में सफलता मिल जाएगी। किन्तु एक नौसिखिये को, जो इस जीवन में पहली बार योगाभ्यास करने का प्रयास कर रहा है और जिसे पूर्व जन्मों के संस्कार प्राप्त नहीं हैं, प्रत्याहार में निश्चित सफलता प्राप्त करने में काफी समय लग सकता है। एक योगाभ्यासी अपनी साधना के अनुभवों और सफलता से स्वयं यह अनुमान लगा सकता है कि वह एक नौसिखिया है अथवा अनेक जन्मों से परिपक्व हुआ निपुण योगी।

सोयेगा सो खोयेगा, जागेगा सो पायेगा

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

आज कम-से-कम विचारवान् इन्सान को तो इतना ज्ञान हो गया है कि एकाग्रता, शान्ति और शक्ति को प्राप्त करने के लिए धन, विद्या जैसे भौतिक साधन पर्याप्त नहीं हैं। यह भी हमलोगों को पता चल रहा है कि केवल शास्त्र का मौखिक या लिखित ज्ञान होने से ये तीन चीजें प्राप्त नहीं हो सकतीं। इन तीनों की प्राप्ति के लिए सब चीजें एक किनारे रख दी जाएँ और केवल एक चीज को पकड़ा जाए, जिसको कहते हैं 'साधना' तो काम चल जाएगा। इसी साधना को सीखने के लिए आज सारी दुनिया बेचैन है, और कितनी बेचैन है आप इसका अन्दाज नहीं लगा सकते। आज हिन्दू और मुसलमान आमने-सामने बैठ नहीं सकते, मगर योग सीखने के लिए सब एक साथ दौड़ करके आते हैं। हम लोग अरब देशों में भी जाते हैं। मैं उदाहरण दे रहा हूँ, धर्म पर नहीं बोल रहा हूँ। वहाँ प्रत्येक कक्षा में डेढ़ हजार, दो हजार की संख्या में लोग बैठते हैं, नि:शुल्क नहीं, सशुल्क। इसके बाद भी उन लोगों का रोज का अनुरोध यही रहता है कि आप यहीं रुक जाइए और हमें सिखाते रहिए।

क्या सिखाते रहिए? एक ऐसी 'साधना' जिसको हम अपने जीवन में नित्यप्रति आधा घंटा, सवा घंटा, जितना समय मिले करें और उसके बाद हमारा मन सूक्ष्म होते जाए और फिर एक ऐसी स्थिति आ जाए कि हम एक-आध घंटे उस स्थिति में बैठ सकें। केवल यही नहीं, बल्कि कभी-कभी हमसे पूछा जाता है, 'स्वामीजी,

अमेरिका वगैरह में जो लोग हरे-राम-हरे-कृष्ण करते रहते हैं, वे क्यों करते हैं, उनका क्या प्रयोजन है?' हम समझाते हैं कि भाई कोई भी हो, चाहे बड़ा मनुष्य हो या छोटा बच्चा हो, अफसर हो या दुकानदार हो, आखिर इन्सान ही तो है, और हर इन्सान अपने को ज्यादा शक्तिशाली, ज्यादा ज्ञानवान् बनाना चाहता है। अपने अन्दर जो शुद्ध चेतन स्वरूप है, उसको आखिर कैसे पहचानें? इसके लिए जो भी उपाय हमलोगों के यहाँ बतलाए गए हैं, उन सबका नाम है 'योग'।

योग एक ऐसा रास्ता है जिसके द्वारा हम अपने अन्दर जा सकते हैं। इसके उपाय बहुत सरल हैं, जैसे अजपाजप या त्राटक। इसी तरह किसी ने प्राणायाम का मार्ग बताया है, और इधर चार-पाँच वर्षों में मैंने कीर्तन पर भी बड़े प्रयोग किए हैं। आप लोगों को थोड़ी देर के लिए ऐसा कीर्तन कराऊँगा कि आप लोग नाम-पता भूल जाएँगे। थोड़ी देर के लिए अगर कोई अहंकार के ऊपर पहुँच जाए तो परम शान्ति, परम सुख की प्राप्ति होती है। हमने विगत वर्षों में कीर्तन पर कुछ प्रयोग और शोध किए हैं, और इसके वैज्ञानिक आँकड़े भी तैयार किए हैं। कीर्तन भक्तियोग का अंग है। कीर्तन की स्थिति में मस्तिष्क में जो तरंगें होती हैं, उनकी क्या गति रहती है? मनुष्य के व्यवहार और उसकी भावना पर इसका क्या असर पड़ता है? इसके बहुत-से वैज्ञानिक तथ्य हमलोगों ने तैयार किए हैं, जिन्हें पुस्तक रूप में प्रकाशित भी किया जाएगा।

इस पुस्तक में कीर्तन करने वाले के शरीर के अन्दर की स्थितियाँ और दिमाग से सम्बन्धित 'एनर्जी साइकिल' से सम्बन्धित बातों का वर्णन दिया जायेगा। हम लोगों के दिमाग में जो पावर रहती है, वह पावर चौबीसों घण्टे समान नहीं रहती। सबेरे 4 से 6 बजे तक एकदम निम्न रहती है, 6 बजे के बाद बढ़ती है और 12 बजे तक बहुत अधिक हो जाती है। 12 बजे से 2 बजे दोपहर तक घटती है, 2 से 6 बजे तक बढ़ती है, संध्या 6 के बाद वह घटती जाती है, 12 बजे रात तक एकदम शून्य अवस्था में आ जाती है। फिर 12 बजे के बाद 4 बजे तक थोड़ी बढ़ती है, 4 से 6 बजे तक शून्य अवस्था में रहती है। इसको हमलोग कहते हैं मस्तिष्क की एनर्जी साइकिल। इस पर कीर्तन का क्या प्रभाव पड़ता है, इस समय मस्तिष्क की तरंगें कैसी रहती हैं, इसको हमलोगों ने नापा, उसके आँकड़े प्रस्तुत किए, और वही पुस्तक हम तैयार कर रहे हैं। इसमें अभी साल भर लगेगा, और कुछ आँकड़े प्राप्त होने बाकी हैं।

सबेरे 4 से 6 बजे तक मस्तिष्क की क्षमता एकदम शून्य जैसी रहती है, लगता है मरे हुए के दिमाग से थोड़ा ही फर्क है। इसलिए प्रात: 4 से 6 बजे तक आदमी को बढ़िया नींद आती है, बहुत बढ़िया। मनुष्य में जो प्राणशक्ति है, वह उस समय शून्य में रहती है, उसको कैसे जागृत किया जाए? संध्या 6 से 12 बजे तक उस शक्ति का विघटन होते रहता है, उस विघटन को किस प्रकार रोकें? हम सिनेमा

जाते हैं, उससे कुछ काम बनता नहीं। क्लब में जाते हैं, उससे भी कुछ काम बनता नहीं। हमने इसके लिए जो छोटा-सा काम किया है वह यह कि नादयोग द्वारा इस शक्ति को जागृत किया जा सकता है। नाद माने शब्द। कोई भी नाद शब्द है और वह नाद शक्ति का स्वरूप है, चेतना का स्वरूप है, और योगी लोग कहते हैं साक्षात् ब्रह्म है। कीर्तन नादयोग के अन्तर्गत आता है। कीर्तन में राम-राम, ॐ, सीताराम—जो भी शब्द हो, उसके साथ ढोलक या मृदंग बजाते हैं, झांझ बजता है, मंजीरा बजता है, करताल बजती है, नाद उत्पन्न होता है। वह नाद है क्या चीज? नाद तरंग है, लहर है शक्ति की। शक्ति की लहर जब हमारे मस्तिष्क पर पड़ती है, तो उस समय हमारे मस्तिष्क की प्राण शक्तियाँ जागती हैं। जब नाद काफी देर तक कान में जाता है, उस समय लोगों को बहुत अच्छा लगता है। हमने कई देशों में दो-तीन घंटे तक कीर्तन करवाकर देखा है, फिर उनसे पूछा तो वे कहते हैं, स्वामीजी बहुत अच्छा लगा, बहुत ही आनन्द आया।

यह जो आनन्द आप कहते हैं, वह है क्या? वास्तव में क्या चीज आनन्द देती है? हम लोगों ने इसके वैज्ञानिक आँकड़े एकत्र किए हैं। हमारे मस्तिष्क में विद्युत तरंगें रहती हैं जिनमें एक तरंग का नाम है अल्फा। अल्फा तरंग का संबंध मस्तिष्क से तथा मनुष्य की चिन्ता और शान्ति से होता है। यह ज्ञात हुआ है कि जब वह कम होती है तो चिन्ता बहुत होती है। व्यक्ति बेहद चिन्ता करेगा, फिक्र करेगा, उसका मन कभी यहाँ, कभी वहाँ भागेगा, और छोटी-छोटी चीज पर झल्लाता है, खिसियाता है। जब वह अल्फा तरंग व्यापक और गहन हो जाती है, उस समय वह व्यक्ति अपने आप शान्त हो जाता है। जब आप कीर्तन सभा में जाते हैं, कान से कीर्तन सुनाई देता है, नाद का असर मस्तिष्क पर पड़ता है, तो इसके बाद जो शान्ति मिलती है वह इसी तरंग का परिणाम है। जिस शान्ति को आप चाहते हैं, और जिस चिन्ता से आप मुक्त होना चाहते हैं, इसके लिए जो भी उपाय आप कर रहे हैं, वह ऐसा है मानो आप एक बोतल में पेशाब भर दें और बोतल को दिनभर बाहर से धोएँ। बोतल साफ नहीं होगी। ठीक इसी प्रकार के आप लोगों के सब प्रयोग हैं।

स्वामी शिवानन्द जी कहा करते थे, 'चार चौबे एक बार मथुरा से प्रयाग जाने निकले। रात को निकले और नाव में बैठकर नाव को बारी-बारी से खेने लगे। इन बुद्धुओं ने नाव का लंगर ही नहीं खोला था। नाव रस्सी से बँधी हुई थी, और सबने कस कर भांग पी थी। रात भर खेते रहे। जब पौ फटी तो देखा, अरे प्रयागराज तो अभी तक आया नहीं। कैसे नहीं आया भई? 8 घंटे तक खेते रहे, प्रयागराज तो आना चाहिए।' उसी तरह से हमलोग भी साधना करते हैं।

अब प्रश्न यही है कि क्या हमने वह साधना की है जिससे हमारी चिन्ता मिटती है? हमारी स्थिति तो ऐसी है जैसे पेड़ पर चिड़िया बैठी है, अन्धेरे में बन्दूक चलानी है, लगे तो ठीक। हमारी साधना भी इसी तरह की होती है। हम बरसों

तक साधना करते हैं, पर सफल नहीं हो पाते क्योंकि हमारी साधना करने का तरीका बेतरतीब है, उसका कोई आधार नहीं। इसीलिए योग विद्या में हर चीज को एक सुव्यवस्थित ढंग से, एक नियम-प्रणाली के अन्तर्गत जोड़ा गया है। सब नियमों में अजपाजप सर्वप्रथम है, इसके साथ दूसरी साधना भी होनी चाहिए और वह दूसरी साधना क्या होनी चाहिए? इसे अपने गुण को देखते हुए करना चाहिए। रजोगुणी को प्राणायाम के साथ अजपाजप करना चाहिए। तमोगुणी को हठयोग का अभ्यास भी करना चाहिए, तब उन लोगों को अजपाजप से अधिक मदद मिलेगी। नहीं तो नींद आयेगी और वे लोग ध्यान करते-करते सो जायेंगे। सोचेंगे, भई समाधि लग गई।

हमारे साथ भी एक बार ऐसा ही हुआ था। शाम को 6 बजे बैठे तो आराम से समाधि लग गई यानि नींद आ गई। सुबह 6 बजे समाधि टूटी तो बड़ी खुशी हुई कि समाधि लगी। स्वामी शिवानन्द जी को बताया तो वे सब समझ गये। उन्होंने हमें अच्छी तरह से समझाया कि भई, समाधि ऐसे ही नहीं लगती। असल में यह हुआ कि तुम्हारा तमोगुण उस समय जाग गया।

बहुत लोगों का अनुभव सुना है कि साधना करते समय, अजपाजप करते-करते इतने विचार आते हैं, ऐसे निरर्थक विचार आते हैं जिनका जीवन के साथ सम्बन्ध ही नहीं है। जो विचार अनावश्यक हैं, वही विचार आते हैं क्योंकि हमारा मन रजोगुणी है। इसलिए साधक को अपनी श्रेणी जान लेनी चाहिए, वह रजोगुण प्रधान है या तमोगुण प्रधान या सतोगुण प्रधान? नहीं तो गुरुजी से पूछ लेना चाहिए। वरना क्या होगा? मान लो, कोई लड़का कॉलेज में जाकर कहे कि एम.ए. में भर्ती होऊँगा, तो बाबू क्या कहेगा? 'अरे बाबा! पहले मैट्रिक तो पास कर लो!' कहीं भी भर्ती होने जाते हो, तो श्रेणी का ख्याल होता है न? श्रेणी का मतलब होता है योग्यता। श्रेणी का ज्ञान होना चाहिए कि हम कौन-सी श्रेणी में हैं।

सत्त्वगुण प्रधान, रजोगुण प्रधान, तमोगुण प्रधान—इन तीनों को हमारे ऋषि-मुनियों ने पाँच श्रेणियों में विभक्त किया है—लोअर प्राइमरी, प्राइमरी, मिडिल स्कूल, हाई स्कूल और कॉलेज। इन्हें योग की भाषा में कहते हैं मूढ़, क्षिप्त,

विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। सभी लोग इन पाँचों श्रेणियों में किसी-न-किसी रूप में आते हैं।

मूढ़ श्रेणी उन लोगों की है जिनका मन बिल्कुल भैंस की तरह घोंचू रहता है, बिल्कुल हिलता-डुलता नहीं है। न दु:ख का पता, न सुख का पता। जो क्षिप्त होते हैं, उनका दिल टूटा हुआ है। जिन्दगी की सारी आशाओं पर पानी फिर गया, इनका दिमाग एक जगह टिकता ही नहीं। इनको किसी मानसिक अस्पताल भेज दिया जाता है। तीसरी श्रेणी है विक्षिप्त लोगों की, अधिकांश लोग इसी श्रेणी में आते हैं। इनका मन यहाँ आया, फिर भागा, यही क्रम चलता है। चौथी और पाँचवी श्रेणी एकाग्र लोगों की है जिन्होंने अपने मन को पकड़ लिया है।

अब इन पाँच श्रेणियों के अनुसार साधना का निदान करना है। इसका मतलब यह नहीं कि अलग-अलग साधना करिये। साधना अजपाजप, त्राटक, मंत्रजप या जो भी आपके गुरुजी ने बतायी होगी, वही रहेगी, मगर साथ ही अवगुणों के अवरोधों की भी साधना करनी होगी। अगर अवरोध का निराकरण नहीं करेंगे तो साधना का क्या परिणाम होगा? अजपाजप करते-करते सोते ही रहोगे या सोचते ही रहोगे। इसीलिए आसन हैं, प्राणायाम हैं, हठयोग की क्रियाएँ हैं, नाड़ी शुद्धि है, प्राण शुद्धि है, चक्र शुद्धि है। शुद्धि यानि साफ करना। प्राणायाम से प्राण शुद्धि होती है, आसन से भूत शुद्धि होती है। भूत का मतलब भूत-प्रेत नहीं, पंच भूतों से बनी हुई भौतिक काया है। भूत शुद्धि का मतलब शरीर शुद्धि। इसी तरह वाक् शुद्धि भी होती है। मंत्र से चक्र शुद्धि होती है। चक्रों पर मंत्रों का ध्यान करने से यह होता है।

इस प्रकार हमारा योग कार्य चल रहा है, योग का परिचय देना। हम यहाँ सन् 1956 में पहली बार आये थे। चूँकि अब हम दूर चले गये हैं, और हमारा काम भी चारों तरफ फैल गया है, इसलिए यहाँ बार-बार नहीं आ पाते हैं। एक-दो साल में आप लोगों से मिलना तो हो ही जाता है, पर अब मिलने का मौका भी कम मिलेगा क्योंकि काम बहुत बढ़ गया है और बढ़ते ही जा रहा है। 1974 में हम अगर 4 या 5 हजार योग शिक्षक तैयार नहीं करेंगे तो हमारे अनेकों केन्द्र ऐसे हैं जो सो जायेंगे। हमारे अनेकों केन्द्र ऐसे हैं जहाँ जमीन-मकान तैयार हैं, मगर सिखलाने वाले नहीं हैं। इतने ज्यादा लोग योग सीखने के लिए तैयार हो गये हैं।

इस छोटे-से सत्संग से कुछ होगा नहीं। यह तो मात्र एक परिचय है। आगे चलकर कुछ ऐसा होना चाहिए जिससे लोगों को योग की व्यावहारिक शिक्षा दी जा सके। हम अजपा जप और त्राटक पर कितने भी व्याख्यान दें, पर्याप्त नहीं होगा। पानी-पानी कहने से तो प्यास बुझेगी नहीं। यहाँ के योग मित्र मंडल वालों को आध्यात्मिक एवं यौगिक प्रशिक्षण के लिए कुछ व्यावहारिक करना होगा। वे कुछ ऐसा सोचें और कुछ करें भी कि यहाँ के लोगों की आध्यात्मिक और यौगिक उन्नति हो सके।

–1974, गोंदिया योग सम्मेलन

प्राणायाम का महत्त्व

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

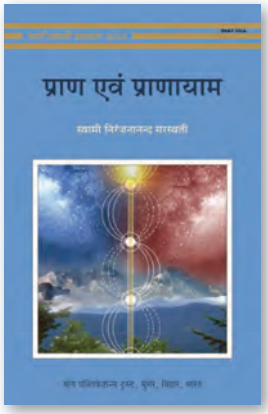

प्राणायाम के प्राचीन योगाभ्यासों की जानकारी भारत में 4000 वर्षों से भी पहले से रही है। महाभारत काल के एक अद्वितीय ग्रन्थ, श्रीमद् भगवद्गीता में प्राणायाम का उल्लेख यह सूचित करता है कि उस काल में प्राणायाम के अभ्यास उतने ही प्रचलित थे जितने कि यज्ञ। बुद्ध-पूर्व के काल में लिखे गये अनेक उपनिषदों में भी प्राणायाम की विधियों का उल्लेख किया गया है। छठी से पंद्रहवीं शताब्दी के बीच लिखे गये हठ योग के ग्रन्थों, जैसे, हठयोग प्रदीपिका, घेरण्ड संहिता एवं हठरत्नावली में इन अभ्यासों का विस्तृत विवरण मिलता है। ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय मौखिक परम्परा के माध्यम से हस्तान्तरित किये जा रहे उन अभ्यासों को पुनर्जीवित और सुव्यवस्थित करने की आवश्यकता अनुभव हुई। बौद्ध धर्म के उदय के साथ ही वैदिक संस्कृति का ह्रास होने लगा और अनेक यौगिक अभ्यास या तो विलुप्त हो गये या अभ्यासियों द्वारा उनका दुरुपयोग होने लगा। अत: उन ग्रन्थों के रचयिताओं ने अभ्यासों की शुद्धता और प्रामाणिकता को पुन: स्थापित करने का प्रयास किया।

इक्कीसवीं शताब्दी में इन अभ्यासों के उद्देश्य और ज्ञान को पुन: स्थापित करने की आवश्यकता को फिर से अनुभव किया जा रहा है। पिछले कुछ दशकों में हुए योग के पुनर्जागरण ने आसन और प्राणायाम को घरेलू शब्दावली का हिस्सा बना दिया है। किन्तु अधिकतर साधक न तो अभ्यासों के सार को समझ पाये हैं और न ही उनकी गहराई तक जा पाये हैं।

सिद्ध ऋषि-मुनियों के ज्ञान को वर्तमान युग हेतु उपयुक्त भाषा एवं पद्धति में योग साधकों के बीच लाना सत्यानन्द योग का उद्देश्य तो रहा ही है, इस क्षेत्र में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान भी रहा है। यह हमारे गुरुओं, स्वामी शिवानन्द जी एवं स्वामी सत्यानन्द जी का उपहार और आशीर्वाद भी है।

प्राण क्या है?

उपनिषदों में एक कथा कही गयी है। एक बार शरीर के अंदर वास करने वाले सभी देवताओं—वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, आकाश, वाणी तथा मन में वाद-विवाद

छिड़ गया। यह घोषणा करते हुए कि मैं ही इस नाशवान् शरीर को जीवित रखता हूँ, प्रत्येक ने स्वयं के सर्वश्रेष्ठ होने का दावा किया। प्राण उनकी इस बहस को सुन रहा था। उसने अंत में उन सब से कहा, 'आप स्वयं को भ्रम में न रखें। मैं ही स्वयं को पाँच भागों में विभक्त कर इस शरीर को जीवित रखता हूँ।' देवताओं को उस पर विश्वास नहीं हुआ। प्राण ने शरीर से स्वयं को खींचना आरंभ कर दिया। अन्य देवताओं ने स्वयं को भी तत्काल निष्कासित हुआ अनुभव किया। जब प्राण ने पुन: शरीर में प्रवेश किया, तब देवताओं ने पाया कि वे भी अपनी-अपनी जगहों पर पहुँच गये हैं। प्राण की श्रेष्ठता को स्वीकार कर लेने के बाद वे उसके सम्मुख नतमस्तक हो गये।

प्राण न केवल शरीर को जीवित रखने वाली जीवनी शक्ति है, बल्कि यह प्रत्येक स्तर पर सृजन भी करता है। भारत के मनीषियों ने हमेशा आदिशक्ति के अस्तित्व, उसके स्वभाव, उसकी सम्भावनाओं तथा उसे साधने के तरीकों को समझने का प्रयास किया है। प्रत्येक योग विज्ञान, जैसे मंत्र, यज्ञ, तप, एकाग्रता एवं ध्यान के विभिन्न अभ्यासों का उद्देश्य होता है, व्यक्ति के अंदर स्थित उस प्राणशक्ति को जाग्रत करना और उसका विस्तार करना।

'प्राण' शब्द दो ध्वनियों 'प्रा' एवं 'ण' से बना है, जिसका अर्थ है वह शक्ति जो निरंतर गतिमान हो। प्राण सभी सचेतन प्राणियों में ऊर्जा के रूप में उनकी प्रत्येक ऐच्छिक और अनैच्छिक क्रिया, प्रत्येक विचार, मन और शरीर के प्रत्येक स्तर पर विद्यमान होता है। वैज्ञानिक शोध प्राण का वर्णन एक बहुआयामी ऊर्जा के रूप में करते हैं जो विद्युत् चुम्बकीय, प्रकाशकीय, ऊष्मीय तथा मानसिक ऊर्जा का सम्मिश्रण है।

प्राण अचेतन जगत् में भी विद्यमान रहता है, इस स्तर पर यह गति, वृद्धि और क्षय का कारण बनता है। वास्तव में प्राण व्यक्त जगत् का आधार है। यह शक्ति आदि चेतना की सृजन करने की 'आद्य इच्छा' के रूप में प्रकट हुई है। छान्दोग्य उपनिषद् में कहा गया है–

सर्वाणि ह वा इमानि भूतानि।
प्राणमेवाभिसंविशंति प्राणमभ्युज्जिहते॥1.11.5॥

प्रलय काल में सभी चल-अचल, जड़-चेतन प्राणी प्राण में विलीन हो जाते हैं और सृजन काल में उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक प्राणी के सम्पूर्ण शरीर में प्राण जिस प्रकार व्याप्त रहता है उसे योगी भौतिक शरीर से सूक्ष्म अस्तित्व वाला प्राणमय कोश कहते हैं। इस प्राणिक क्षेत्र के अस्तित्व को आधुनिक विज्ञान ने भी प्रमाणित किया है। विशेषतया किर्लियन फोटोग्राफी की अति संवेदनशील पद्धति द्वारा मनुष्य के अतिरिक्त निर्जीव वस्तुओं के चारों ओर भी एक प्रभामण्डल के अस्तित्व को देखा गया है। यह भी पाया गया कि प्राणी की दशा के अनुसार प्रभामण्डल में परिवर्तन हुआ।

प्राणिक शरीर में प्राण नाड़ियों के माध्यम से प्रवाहित होता है और चक्रों में संचित रहता है। प्राणियों में प्राण जन्मजात होता है। हम प्राण की एक निश्चित मात्रा के साथ जन्म लेते हैं और इसे कायम रखते हैं, बढ़ाते या कम करते हैं उस वायु के माध्यम से जिसे हम श्वास में ग्रहण करते हैं, उस भोजन के द्वारा जो हम खाते हैं, उन विचारों के द्वारा जिन्हें हम सोचते हैं, उन क्रियाओं के द्वारा जो हम करते हैं और उस जीवनशैली से जिसे हम जीते हैं। जब हमारी मृत्यु होती है तब संचित प्राण शरीर को छोड़ जाता है।

प्राणायाम

प्राणायाम विज्ञान का विकास सिद्धि के शिखर पर पहुँचे योगियों द्वारा अपने अंतर्ज्ञान और प्राण के विषय में अपनी अनुभवजन्य समझ के आधार पर किया गया है। श्वसन क्रिया का उपयोग प्राणिक क्षेत्र में जाने के लिए, शारीरिक संतुलन प्राप्त करने के लिए और मन को नियंत्रित करने के लिए किया गया। उन अभ्यासों के द्वारा शरीर और मन रूपी उपकरण को चेतना की उच्च अवस्थाओं तक पहुँचने योग्य बनाया गया ताकि अंततोगत्वा परमात्म तत्त्व के साथ एकात्म होने की अनुभूति प्राप्त हो सके।

चूँकि श्वास प्राणायाम का माध्यम है, इसलिए इसकी विधि श्वसन की तीन अवस्थाओं पर आधारित है–पूरक (श्वास लेना), कुम्भक (श्वास रोकना) और रेचक (श्वास छोड़ना)। इन अवस्थाओं के क्रमपरिवर्तन तथा नियंत्रण के द्वारा

प्राणायाम के विभिन्न अभ्यास बनते हैं। तकनीकी अर्थ में कहा जाये तो वास्तव में प्राणायाम केवल कुम्भक है। महर्षि पतंजलि के योगसूत्रों में कहा गया है– *तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः,* अर्थात् श्वास-प्रश्वास की गति को अवरुद्ध कर उसे सुदृढ़ करना ही प्राणायाम है।

पूरक और रेचक की विधियाँ कुम्भक को प्रवृत्त करती हैं। कुम्भक करना ही महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यही प्राण को आत्मसात् करने के लिए लम्बी अवधि होती है, इसी प्रक्रिया में कोशिकाओं के अंदर ऑक्सीजन और कार्बन डायक्साइड को आदान-प्रदान का अधिक समय मिल पाता है। चूँकि श्वास का शरीर की विविध क्रियाओं और उसके अंगों के अतिरिक्त मन से भी घनिष्ठ सम्बन्ध है, इसलिए श्वास को नियन्त्रित कर हम इन सभी आयामों को प्रभावित कर सकते हैं।

प्राणायाम के प्रारम्भिक अभ्यास प्राणिक स्तर पर शरीर के अंदर स्थित नाड़ियों को परिशुद्ध करते हैं। शास्त्रों में बताया गया है कि प्राणिक शरीर में 72,000 नाड़ियाँ और छः प्रमुख चक्र हैं, हालाँकि एक सामान्य व्यक्ति की अनेक नाड़ियाँ अवरुद्ध रहती हैं और चक्रों से आंशिक ऊर्जा ही निर्मुक्त होती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि हम ऊर्जा, मन और चेतना से सम्बन्धित अपनी अंतःशक्तियों का पूरा उपयोग नहीं करते हैं। शारीरिक या मानसिक स्तर पर हम जिन नकारात्मक स्थितियों का अनुभव करते हैं, वे ही अवरोधों के कारण भी हैं और उनके परिणाम भी। हमारी नाड़ियों एवं चक्रों की दशा हमारे संस्कारों के अतिरिक्त पुरुषार्थ तथा अनुग्रह से निर्धारित होती है। प्राणायाम के अभ्यास से नाड़ियाँ धीरे-धीरे शुद्ध होती हैं और उनमें प्राण का निर्बाध प्रवाह होने लगता है।

अभ्यास के उच्च स्तरों पर प्राण के प्रवाह की दिशा प्रभावित होती है और चक्रों से अत्यधिक मात्रा में ऊर्जा निर्मुक्त होती है। जब ये प्रक्रियायें सक्रिय हो जाती हैं तब अनेक नयी अनुभूतियाँ होने लगती हैं। अभ्यासियों को इन अवस्थाओं से होकर आगे ले जाने के लिए कुशल मार्गदर्शन नितांत आवश्यक है।

स्मरण रहे कि प्राणायाम यूँ ही किया जाने वाला योग का अभ्यास नहीं है। अष्टांग योग पद्धति में यम एवं नियम, षट्कर्म एवं आसनों के लम्बे अभ्यास के बाद इसे किया जाता है और इसके बाद प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का अभ्यास होता है। स्थूल से सूक्ष्म, अन्नमय कोश से आनन्दमय कोश की ओर संतुलित और क्रमिक गति ही इसका उद्देश्य है। हठयोग प्रदीपिका में कहा गया है–

पीठानि कुंभकाश्चित्रा दिव्यानि करणानि च।
सर्वाण्यपि हठाभ्यासे राजयोगफलावधि:॥1.67॥

अर्थात् राजयोग में सफलता प्राप्त होने तक हठयोग पद्धति के आसन, विभिन्न प्रकार के कुम्भक (प्राणायाम) और प्रबोधित करने वाली अन्य विधियों का अभ्यास करते रहना चाहिए। इस संदर्भ में प्राणायाम का उद्देश्य है, प्रत्याहार में पूर्णता प्राप्त करना। पारम्परिक ग्रन्थों में इसका वर्णन केवल इंद्रियों के प्रत्याहार के रूप में नहीं, बल्कि उस अवस्था के लिए किया गया है जहाँ प्रत्येक इन्द्रिय-अनुभव को हम परमात्मा की अभिव्यक्ति के रूप में देखते हैं और अपनी प्राणिक क्षमता को इतना विस्तृत कर चुके होते हैं कि हम अपनी श्वास को तीन घंटे तक रोक सकते हैं। शिव संहिता में कहा गया है–

याममात्रं यदा धर्त्तुं समर्थ: स्यात्तदाद्भुत:।
प्रत्याहारस्तदैव स्यान्नांतरा भवति ध्रुवम्॥3.57॥

अर्थात् जब कोई श्वास को तीन घंटों तक रोक सकता है, तब निश्चित रूप से बिना किसी त्रुटि के प्रत्याहार की अद्भुत अवस्था को प्राप्त किया जा सकता है।

वस्तुत: योग का अभ्यास तब आरम्भ होता है जब हम प्राणायाम के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। आसनों के अभ्यास के साथ हम शरीर को नियंत्रित करने वाली ऊर्जाओं को सम्हालने योग्य हो जाते हैं। श्वास के माध्यम से प्राणायाम के द्वारा शरीर के अंदर हम सूक्ष्म शक्ति की सजगता का विकास करते हैं, और मन को सूक्ष्म क्रियाओं के प्रति सजग होने का निर्देश देना ही योग की शुरुआत है।

–'प्राण एवं प्राणायाम' से उद्धृत

आत्मसमर्पण

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

एक सच्चा भक्त प्रभु से मुक्ति की कामना भी नहीं करेगा। जब तक उसके हृदय में मुक्ति की सूक्ष्म इच्छा बनी रहेगी, वह सच्चा भक्त कहलाने का दावा नहीं कर सकता। यद्यपि मोक्ष की इच्छा सात्त्विक प्रकृति की होती है, फिर भी वह भक्त तो उस इच्छा का दास हो गया है। वह अभी भी स्वार्थी है, इसलिए प्रभु का निष्कपट प्रेमी कहलाने के अयोग्य है। उसने अभी भी सच्चा, सम्पूर्ण समर्पण नहीं किया है। मुक्ति की अपेक्षा करना एक प्रकार का ढोंग ही है। एक सच्चा भक्त अच्छी तरह जानता है कि प्रभु तो प्रेम और करुणा के सागर हैं। ऐसी स्थिति में क्या वह उनसे कुछ भी माँगने का साहस कर सकता है?

तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत।
तत्प्रसादात्परां शान्तिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम्॥18.62॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥18.66॥

'हे अर्जुन! तू सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही शरण में जा, उस परमात्मा की कृपा से तू परम शान्ति तथा सनातन परमधाम को प्राप्त होगा। सम्पूर्ण कर्त्तव्य कर्मों को त्यागकर तू केवल मेरी ही शरण में आ जा, मैं तुझे समस्त पापों से मुक्त कर दूँगा, तू शोक मत कर।'

इन श्लोकों में भगवान श्रीकृष्ण की शिक्षा का सारांश दिया गया है। यदि कोई व्यक्ति इन श्लोकों के वास्तविक अभिप्राय को आत्मसात् कर ले तो वह शीघ्र ही अपने जीवन के उद्देश्य को प्राप्त कर लेगा, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। लेकिन इस शिक्षा में इंगित आत्मसमर्पण शुद्ध, निःशंक, अबाध, उन्मुक्त, सम्पूर्ण एवं अशेष होना चाहिए। आप मन-ही-मन गुप्त संतुष्टि हेतु कोई भी इच्छा न रखें।

प्रभु का सच्चा भक्त उनके विरुद्ध कदापि शिकायत नहीं करता। किन्तु एक कच्चा भक्त संकटग्रस्त होने पर ईश्वर की निन्दा करने लगता है। वह कहता है, 'मैंने पचीस लाख जप किया है। मैं प्रतिदिन श्रीमद्भागवत का अध्ययन कर रहा हूँ, फिर भी ईश्वर मुझसे प्रसन्न नहीं है। उसने मेरा दुःख-दर्द दूर नहीं किया है। ईश्वर अन्धा है। उसने मेरी प्रार्थना नहीं सुनी है। वह कैसा ईश्वर है? मेरा उसमें विश्वास नहीं।'

एक सच्चा भक्त दुःख-दर्द और दीनता में भी आनन्द का अनुभव करता है। वह शोक-संताप का सदैव स्वागत करता है ताकि वह एक क्षण के लिए भी ईश्वर को न भूल सके। उसे दृढ़ विश्वास है कि ईश्वर सब-कुछ उसकी भलाई के लिए

ही करते हैं। कुन्ती देवी ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की थी, 'हे प्रभु! मुझे सदा संकट और दु:ख ही दो। तभी मैं तुम्हें हमेशा याद करती रहूँगी।'

पुरी में एक ऐसे सन्त थे जिन्होंने स्वयं को भगवान नारायण को पूर्णत: समर्पित कर दिया था। वे दीर्घकालिक पेचिश से गम्भीर रूप से ग्रस्त थे। वे पूरी तरह असहाय हो गये। तब भगवान नारायण ने स्वयं एक नौकर के रूप में कई महीनों तक उनकी सेवा की! कर्म का सिद्धान्त अटल है। इस अकाट्य नियम के प्रभाव से कोई नहीं बच सकता। प्रभु नहीं चाहते थे कि अपने प्रारब्ध कर्मों के क्षय के लिए उनके भक्त को पुन: जन्म लेना पड़े। अत: उस सन्त को दीर्घकालिक बीमारी झेलनी पड़ी। यह उनका कार्मिक शुद्धिकरण था। चूँकि सन्त ने स्वयं को पूर्णत: समर्पित कर दिया था, इसलिए प्रभु ने स्वयं उनकी सेवा की। यहाँ प्रभु की असीम कृपा परिलक्षित होती है। वे अपने समर्पित भक्तों के स्वयं दास हो जाते हैं।

आत्मसमर्पण का तात्पर्य जंगल में एकान्तवास से नहीं है। इसका अर्थ समस्त क्रिया-कलापों का त्याग भी नहीं है। प्राय: लोग तामसिकता या जड़ता को आत्मसमर्पण मान लेने की गलती करते हैं। यह भारी भूल है। वास्तव में अपेक्षा की जाती है आन्तरिक समर्पण की। अहंकार और इच्छाओं का उन्मूलन होना चाहिए।

दुराग्रही राजसिक मन पूर्ण समर्पण के मार्ग की सबसे बड़ी बाधा है। निम्न प्रकृति स्वयं की रक्षा हेतु बार-बार सिर उठाती है। इच्छाएँ पुनर्जीवित होकर सामने आती हैं। ये कुछ समय के लिए तो दब जाती हैं लेकिन पुन: दुगुनी शक्ति से प्रकट होती हैं। व्यक्ति इन इच्छाओं द्वारा यहाँ-वहाँ घसीटा चला जाता है। दैवी कृपा में विश्वास कीजिए। स्वयं को पूर्णत: प्रभु को समर्पित कर दीजिए। उनमें पूर्ण श्रद्धा रखिए और शान्ति में निवास कीजिए। ऐसा करने पर सभी दु:ख-तकलीफें, चिन्ता-परेशानियाँ, कष्ट-क्लेश तथा अहंवादी प्रयास स्वत: समाप्त हो जायेंगे।

प्रह्लाद का प्रभु के प्रति विश्वास और समर्पण देखिए। उसने स्वयं को पूर्णत: भगवान हरि को अर्पित कर दिया था। उसके मन में ईश्वर के अलावा अन्य कोई विचार नहीं था। यद्यपि उसके पिता द्वारा उसके प्रति अनेक प्रकार के दुर्व्यव्यहार किए गए, तथापि उसे ईश्वर का पूर्ण अनुग्रह एवं आशीर्वाद प्राप्त था। उसे पर्वत शिखर से नीचे फेंका गया, हाथी के पैरों तले कुचलवाया गया, प्रज्ज्वलित अग्नि में फेंका गया, पैरों को लोहे की जंजीर से बांधकर उसे समुद्र में फेंका गया, उसके ऊपर सर्प फेंके गये तथा उसके सिर पर उबलता हुआ तेल डाला गया—इतनी यातनाओं के बावजूद भगवान नारायण में उसका विश्वास तनिक भी न हिला! उसके होठों पर नारायण का नाम सतत् बना रहा। प्रत्येक भक्त का विश्वास ऐसा ही होना चाहिए।

निम्न प्रकृति की पूरी तरह से मरम्मत की जानी चाहिए। सभी पुरानी बुरी आदतों का उन्मूलन करना होगा। तभी समर्पण पूर्ण हो पाएगा। योजनाएँ मत बनाइये और न निराधार कल्पना ही कीजिए। आज की बुराई को आज ही नष्ट कीजिए। मन एवं बुद्धि को अनुशासित कीजिए। अपने मन एवं इन्द्रियों को दिव्य इच्छा एवं अनुग्रह का माध्यम बनाइये। मौन धारण कीजिए। प्रभु की कृपा एवं प्रेम का अनुभव कीजिए तथा दिव्य भाव-समाधि का आनन्द लीजिए। सदा निश्चिन्त रहिए।

भक्तिभाव के साथ ईश्वर से प्रार्थना कीजिए, 'हे प्रभु! समस्त प्रलोभनों के निवारण, इन्द्रियों के नियंत्रण, पुरानी बुरी आदतों के रूपान्तरण और मेरे समर्पण को पक्का एवं पूर्ण बनाने हेतु मेरी इच्छाशक्ति को मजबूत बनाइये। आप मेरे हृदय में विराजमान होइये, एक क्षण के लिए भी वहाँ से न हटिये। मेरे शरीर, मन एवं समस्त अंगों का उपयोग अपने उपकरणों के रूप में कीजिये। मुझे इस योग्य बनाइये कि मैं सतत् आप में ही निवास करूँ।'

इच्छा, अहंकार और महत्त्वाकांक्षा आत्मसमर्पण के मार्ग की बाधाएँ हैं। सूक्ष्म, गुप्त इच्छाएँ मन की सतह पर आने का प्रयास करेंगी। यदि साधक की सजगता, वैराग्य या आध्यात्मिक साधना में कमी अथवा संसारी लोगों से मेल-जोल में वृद्धि हो जाएगी तो दमित इच्छाएँ दुगुनी शक्ति से प्रकट होंगी। सामान्यत: साधक जाने-अनजाने, इच्छा-अनिच्छापूर्वक अपनी गुप्त तुष्टि हेतु कुछ इच्छाओं को बनाये रखता है। वह अपनी इच्छाओं को पूर्णत: तिलाञ्जलि देना नहीं चाहता। इसलिए

सच्चा और सम्पूर्ण आत्मसमर्पण नहीं हो पाता। यही कारण है कि प्रभु-कृपा का अवतरण पूर्णरूपेण नहीं होता है। यदि इच्छा अथवा अहंकार का अणुमात्र भी शेष रहेगा तो पूर्ण रूप से दिव्य कृपा का मिलना संभव नहीं।

मीरा कहती थी, 'मैंने अपना मन, बुद्धि, हृदय, आत्मा, अपना सब-कुछ, अपने प्रियतम गिरिधर गोपाल को अर्पित कर दिया है।' इसे कहते हैं सम्पूर्ण समर्पण। यहाँ 'सब-कुछ' शब्द ध्यान देने योग्य है। जब कोई भक्त पूर्ण, बेहिचक आत्मसमर्पण करता है तब जाकर ही प्रभु उसके दास बनते हैं। प्रभु अति कठोर भी हैं, वे अपने भक्त की कठिन परीक्षा लेते हैं। अपनी आँखों में काँटे चुभाकर जब सूरदास ने घने जंगल में अन्न-जल बिना कई दिन बिताये तब जाकर ही श्रीकृष्ण मिठाई और जल लेकर उनके सामने प्रकट हुए। जब द्रौपदी का चीर हरण हो रहा था, श्रीकृष्ण ने तब तक उसकी ओर ध्यान नहीं दिया जब तक उसे अपने सामर्थ्य पर भरोसा था तथा उसके अहंकार का लेशमात्र भी बचा हुआ था। लेकिन जब उसने पूर्णतया निष्कपट और विवश होकर पुकारा, 'हे द्वारिकानाथ, हे मेरे प्रियतम प्रभु! मेरी रक्षा करो,' वे तुरन्त दौड़ पड़े। द्रौपदी की साड़ी की लम्बाई असीम हो गई और उसके सतीत्व की रक्षा हुई।

अहंकार का त्याग ही वास्तविक, पूर्ण त्याग है। समस्त इच्छाएँ, स्वार्थ, राग-द्वेष और देहाध्यास, सभी अहंकार की धुरी पर टिके हुए हैं। इसलिए अहंकार का उन्मूलन कीजिए, तभी आत्मसमर्पण पूर्ण होगा। जब तक अहंकार का लेशमात्र भी शेष रहेगा, ईश्वर स्वयं को प्रकट नहीं करेंगे। साधक का सूक्ष्म अहंकार दीर्घ काल तक बना रहता है तथा बार-बार समर्पण में बाधा डालता है। यह अपनी पुरानी आदतों, कामनाओं एवं इच्छाओं से जोंक की तरह चिपका रहता है। यह समर्पण के मार्ग का अवरोध है। स्वयं के गुह्य तुष्टिकरण हेतु यह किसी-न-किसी वस्तु की माँग करता रहता है। इसलिए सम्पूर्ण व्यक्तित्व का समर्पण अनिवार्य है। यही कारण है कि श्रीकृष्ण कहते हैं , 'हे भारत! तू सब प्रकार से उस परमेश्वर की ही शरण में जा।' 'सब प्रकार से'—इन शब्दों पर ध्यान दीजिए। सम्पूर्ण मन, बुद्धि, चित्त, हृदय और आत्मा बिना शर्त प्रभु को अर्पित करने चाहिए। जब आप ध्यान करें, उस समय आपको समस्त प्रकार की चिन्ता, परेशानी एवं भय से मुक्त होना चाहिए।

जब प्रह्लाद ने अपने सम्पूर्ण हृदय से, 'सब प्रकार से' प्रार्थना की तब भगवान हरि एक स्तम्भ से नरसिंह के रूप में प्रकट हुए। प्रह्लाद ने अपने पिता से कहा था, 'मेरे नारायण आपके हृदय में हैं। वे मेरे हृदय में भी हैं। वे आपकी तलवार में भी हैं और इस स्तम्भ में भी।' प्रह्लाद ने चार स्थानों का उल्लेख किया किन्तु भगवान नारायण स्तम्भ से ही क्यों प्रकट हुए? क्योंकि प्रह्लाद की पूरी भावना और पूरी एकाग्रता केवल स्तम्भ पर ही थी। उसकी तीव्र इच्छा थी कि प्रभु नारायण स्तम्भ से प्रकट हों।

निम्न अहंकार हीरे या इस्पात से भी अधिक कठोर होता है। इसे गलाना बहुत कठिन है। शान्ति और ज्ञान के इस परम शत्रु को मारने के लिए अनवरत सतर्कता एवं सतत् प्रयास की आवश्यकता है। यह अपनी गुप्त संतुष्टि हेतु अनेक सूक्ष्म इच्छाओं को बनाये रखता है। आत्मविश्लेषण कीजिए तथा अपने हृदय में छिपी हुई इन सूक्ष्म इच्छाओं को विवेक के प्रकाश से ढूँढ निकालिए और नियमित ध्यान के अभ्यास द्वारा उन्हें बेरहमी से मार डालिए।

शरीर का अधिक ख्याल न करें। यदि ईश्वर को उससे सेवा की आवश्यकता होगी तो वे उसकी रक्षा करेंगे। शरीर को प्रभु-चरणों में अर्पित करके शान्ति का आनन्द लीजिए। एक सच्चा भक्त कहता है, 'भले ही मेरा लाखों बार जन्म हो, लेकिन मैं हमेशा भगवान हरि के चरण कमलों से लगा रहूँ। प्रभु के प्रति मेरी स्वाभाविक भक्ति हो तथा मैं नि:स्वार्थ सेवा-भाव जैसे दिव्य सद्गुणों से युक्त बनूँ।'

'हे प्रभु, मैं आपका हूँ!' यदि आप सच्चे आन्तरिक भाव के बिना ही ऐसा कह देते हैं तो इसे वास्तविक आत्मसमर्पण नहीं कहा जा सकता। यह भाव तो आपके हृदय के अन्दर से आना चाहिए। आपको आमूल रूपान्तरण हेतु तैयार रहना चाहिए। आप अपनी पुरानी आदतों एवं मनोवृत्तियों से चिपके न रहें। आप ऐसी अपेक्षा न रखें कि सब कुछ आपकी इच्छानुसार घटित हो। आपके जीवन का उद्देश्य दिव्य कार्यों का सम्पादन होना चाहिए। आप उन महत्त्वाकांक्षाओं के बारे में न सोचें जिन्हें आपका मन पसंद करता हो। आप अपनी स्वार्थ-पूर्ति के लिए दैवी कृपा अथवा शक्ति के उपयोग की बात कदापि न सोचें। अदम्य अहंकार अनेक प्रकार से अपनी रक्षा करना चाहेगा तथा अपनी पुरानी आदतों को त्यागना नहीं चाहेगा। यह दिव्य सत्ता से सब कुछ प्राप्त करना चाहेगा, लेकिन उसके प्रति समर्पण की बात को बिल्कुल अस्वीकार कर देगा। यही कारण है कि अनेक वर्षों तक साधना करने के बावजूद साधकगण आध्यात्मिक मार्ग पर पर्याप्त प्रगति नहीं कर पाते।

जब भक्त का अहंकार पूर्णत: समाप्त हो जाता है, जब उसकी कोई इच्छा शेष नहीं रह जाती है, जब वह पूर्ण, निष्कपट आत्मसमर्पण कर देता है, जब प्रभु से वियोग की अग्नि उसे अत्यधिक जलाने लगती है, जब वह जल से बाहर पड़ी हुई मछली के समान तड़पने लगता है, तब जाकर भगवान भक्त के सामने प्रकट

होते हैं। तब वे उसके आँसू पोंछते, उसे अपने हाथों से खिलाते तथा स्वयं अपने कन्धों पर उसे उठा लेते हैं।

सच्चे, सम्पूर्ण आत्मसमर्पण में कोई घाटा नहीं है। यह तनिक भी बुरा सौदा नहीं है, बल्कि यह तो एक महान् उपलब्धि है। आपको अपना तन, मन, धन और आत्मा, सब उन्हें अर्पित करने होंगे। तब आपके लिए उसी मात्रा में प्रभु अपने आप को प्रदान करेंगे। ईश्वर का समस्त ऐश्वर्य आपका हो जाएगा। वे आपके अपने हो जायेंगे। मानो आपने अपने प्रेम से उन्हें खरीद लिया हो। वे अब आपके दास हो जायेंगे। प्रभु के साथ आपका वैसा ही तादात्म्य हो जाएगा जैसे चीनी का जल में घुलने के बाद। प्रभु को विशुद्ध प्रेम से भरा हुआ आपका सम्पूर्ण हृदय चाहिए। स्वार्थ का अंशमात्र भी रहने पर आप उन्हें प्राप्त नहीं कर पायेंगे।

जिस भक्त ने सर्वोच्च प्रेम विकसित कर लिया है, वह सामाजिक औपचारिकताओं या नियमों का दास नहीं रहता। उसके लिए घंटी बजाने, आरती दिखाने या अन्य किसी बाह्य प्रदर्शन की आवश्यकता नहीं रहती। वह लोगों की व्यंग्यात्मक टिप्पणियों की तनिक भी परवाह नहीं करता। उसकी अवस्था अवर्णनीय होती है।

आत्मसमर्पण द्वारा भक्त प्रभु को शरीर-मन-आत्मा सहित अपना सब कुछ समर्पित करता है। वह अपने लिए कुछ नहीं रखता। उसका कोई व्यक्तिगत या स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहता। वह अपने आपको प्रभु को अर्पित करके उनका अभिन्न अंग हो गया है। ईश्वर उसकी रक्षा करते हैं तथा उसके प्रति आत्मवत् व्यवहार करते हैं। भक्त सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद को ईश्वर का उपहार समझता है तथा उनसे आसक्त नहीं होता। उसका अहंकार ईश्वर को हस्तान्तरित हो गया है, वह स्वयं को प्रभु के हाथों का उपकरण मात्र समझता है। पत्नी और बच्चों का ख्याल करना अब उसका कर्त्तव्य नहीं है, क्योंकि ईश्वर से भिन्न उसका अस्तित्व है ही नहीं। वे ही सब का ख्याल करेंगे। उन्हें मालूम है कि संसार को सही मार्ग पर कैसे चलाया जाए। प्रभु उन सभी बातों का ख्याल करेंगे जिनके बारे में मनुष्य स्वप्न में भी नहीं सोच सकता।

भक्त की इन्द्रिय-वासनायें नहीं होतीं, क्योंकि उसका शरीर तो प्रभु को अर्पित कर दिया गया है। वह अब ईश्वर की सतत् उपस्थिति के अलावा अन्य किसी चीज का अनुभव नहीं करता। वह पूर्णत: निर्भय हो गया है क्योंकि प्रभु सदैव उसके साथ हैं। उसका कोई शत्रु नहीं है। उसने तो स्वयं को ईश्वर को समर्पित कर दिया है जिनका कोई शत्रु अथवा मित्र नहीं होता। वह चिन्तामुक्त हो गया है क्योंकि उसने ईश्वर की कृपा प्राप्त करके सर्वस्व हासिल कर लिया है। उसके मन में मुक्ति का विचार भी नहीं है। वह तो मुक्ति चाहता भी नहीं है, वह सिर्फ ईश्वर को चाहता है। वह प्रभु के प्रेम से सन्तुष्ट है क्योंकि ऐसी कोई वस्तु नहीं है जो इससे प्राप्त न हो। जब भक्त को भगवान की कृपा प्राप्त हो जाती है तब उसके लिए कुछ भी प्राप्त करना शेष नहीं रह जाता। भक्त चीनी का स्वाद लेना चाहता है, वह स्वयं चीनी

नहीं बनना चाहता। भक्त अनुभव करता है कि ईश्वर से एकाकार होने की अपेक्षा उनसे प्रेम करने में अधिक आनन्द है। इस तरह भगवान भक्त का पूरा ध्यान रखते हैं। भक्त भी कहता है, 'प्रभु, मैं आपका ही हूँ।'

यह आत्मसमर्पण ईश्वर के प्रति असीम प्रेम ही है। भक्त के अन्दर भगवद् चेतना के अलावा और कुछ नहीं रह जाता तथा प्रभु के साथ उसका तादात्म्य हो जाता है। यह सृष्टि का नियम है। पूर्णता ही अंतिम सत्य है। चेतना की विभिन्न अवस्थाओं से गुजरते हुए आत्मा ऊपर उठती है और अन्ततः परमात्मा से तादात्म्य स्थापित करके शाश्वत पूर्णता प्राप्त कर लेती है। यह समस्त आकांक्षाओं और प्रेम की परिणति है।

आत्मसमर्पण का तात्पर्य व्यक्तिगत चेतना के उन्मूलन एवं अनन्त चेतना की प्राप्ति से है। यह निर्विकल्प समाधि के समतुल्य है। भक्त उच्चतम महाभाव की अवस्था में पहुँच जाता है तथा स्वयं को ईश्वर में विलीन कर देता है। लहर समुद्र में समाकर शान्त हो जाती है। चिंगारी अग्नि में लीन हो जाती है। किरण सूर्य में विलीन हो जाती है। मन अनन्त में समा जाता है। व्यक्तिगत आत्मा का परमात्मा में लय हो जाता है। भौतिक चेतना का ब्रह्माण्डीय चेतना में विलय हो जाता है। मरणशील मनुष्य, अजर-अमर ईश्वर हो जाता है।

भक्त भगवान के समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी हो जाता है। वह परम सौभाग्यशाली है। उसके समस्त पाप विनष्ट हो जाते हैं। उसके कोई कर्त्तव्य शेष नहीं रह जाते। वह पूर्णात्मा हो जाता है। उसे सम्पूर्ण संसार परमानन्दमय मालूम पड़ता है। वह सर्वत्र सर्वोच्च प्रेम की अभिव्यक्ति ही देखता है।

ब्रज की गोपियाँ और चक्रवर्ती राजा बलि इसी दिव्य प्रेम के अभ्यासी थे। गोपियों ने स्वयं को श्रीकृष्ण में लीन कर दिया और राजा बलि ने स्वयं को प्रभु के चरणों में अर्पित कर दिया। भगवद्गीता एवं श्रीमद्भागवत में अनगिनत श्लोक हैं जो इस सत्य की घोषणा करते हैं कि आत्मसमर्पण ईश्वर प्राप्ति का एकमात्र उपाय है। श्रीकृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि पूर्ण आत्मसमर्पण ही उसे समस्त पापों से मुक्त करके शान्ति प्रदान कर सकेगा।

दिव्य योजना को अबाध रूप से कार्य करने दीजिए। यही आत्मसमर्पण का रहस्य है। आप स्वयं को एक बदला हुआ व्यक्ति अनुभव करेंगे। यह उच्च अवस्था अवर्णनीय है। आपमें महान् रूपान्तरण होगा। आप दिव्य प्रकाश से आलोकित हो जायेंगे। आप शान्ति एवं परमानन्द से ओत-प्रोत हो जायेंगे। आपका निम्न, क्षुद्र अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। आप एक नया आध्यात्मिक व्यक्तित्व प्राप्त कर लेंगे। आपकी व्यक्तिगत इच्छा ब्रह्माण्डीय संकल्प शक्ति में विलीन हो जाएगी और समस्त प्रकार की अज्ञानता का लोप हो जाएगा। इसलिए हे प्रिय बन्धु! अमर, दिव्य जीवन का आनन्द लीजिए, जहाँ न निराशा है न भय, न भूख है न प्यास, न सन्देह है और न ही भ्रम। दिव्य ऐश्वर्य संपन्न बनिये और अपने चारों ओर शान्ति एवं आनन्द बिखेरिये।

स्वयम् को जानो योगोत्सव भारत योग यात्रा मुंबई - २०१८
Know Yourself Yogotsav Bharat Yoga Yatra, Mumbai - 2018

WHITE HOUSE

योग और संस्कृति

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

पश्चिम के लोग अब ध्यान देने लगे हैं कि प्राइमरी और हायर सेकेण्डरी स्कूल के बच्चों के लिए योग कहाँ तक कारगर और आवश्यक हो सकता है। कुछ साल पहले फ्रांस की एक अध्यापिका हमारे आश्रम आई, उसने सब प्रकार के नोट्स लिये, वापस गई। वहाँ हायर सेकेण्डरी की काउंसिल के सामने उसने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। उस रिपोर्ट के प्रस्तुतीकरण के बाद शिक्षा अधिकारियों ने कहा, 'हमलोग एक साल के प्रयोग के लिए किसी हायर सेकेण्डरी स्कूल को चुन लें और वहाँ रोज एक घंटा योग की कक्षा हुआ करे। यह अध्यापिका जो अभी मुंगेर से प्रशिक्षण प्राप्त करके आई है, वह उन कक्षाओं को चालू करे। शिक्षा विभाग के निरीक्षक समय-समय पर स्कूल जाकर निरीक्षण करें, अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करें और यह जाँच करें कि वर्ष प्रति वर्ष या सत्र प्रति सत्र बच्चे जो सीख रहे हैं उससे उनके स्वास्थ्य में, उनकी पढ़ाई में, उनके आई.क्यू. में और अपने परिवारवालों, शिक्षकों एवं सहपाठियों के साथ संबंधों में क्या परिवर्तन होता है।'

एक साल वे कक्षाएँ चलीं और शिक्षा विभाग के निरीक्षक ने साल के अंत में बच्चों की परीक्षा ली, उनके परीक्षाफल देखे, माता-पिता से रिपोर्ट मांगी, कुछ शिक्षकों से रिपोर्ट मांगी, उनके डॉक्टर से रिपोर्ट मांगी और उसके आधार पर बहुत बड़ी रिपोर्ट प्रस्तुत की। फ्रेंच शिक्षा विभाग के निरीक्षक की वह रिपोर्ट तो मैं आपके सामने यहाँ पढ़ूंगा नहीं, वह हमारी योग विद्या पत्रिका में कई वर्ष पहले शब्दशः प्रकाशित की गई है।

उस रिपोर्ट में उसने लिखा है कि जिन बच्चे-बच्चियों ने योग का अभ्यास एक साल तक एक घंटा प्रतिदिन के हिसाब से किया, उनके आई.क्यू. में, उनकी बुद्धि में जो प्रगति हुई है, वह आज तक किसी भी मनोवैज्ञानिक प्रयोग में नहीं हो पाई है। यह पता चला कि बच्चे अप्रत्याशित रीति से अधिक समझ और बुद्धि वाले हो गए। अगर आप कभी फ्रांस जायें और आपको कोई फ्रेंच बच्चा दे दिया जाए तो आप जानेंगे कि समझ का कितना महत्त्व है। बच्चा बाप की परवाह नहीं करता, माँ की परवाह नहीं करता, जो मन में आता है करता है। उसको वे लोग कहते हैं संस्कृति!

इसी तरह से स्वास्थ्य के मामले में, स्कूल रिज़ल्ट के मामले में भी उन लोगों ने सकारात्मक परिणाम पाए। उसके बाद वहाँ के शिक्षा विभाग ने यह आदेश दिया कि योग की इस शिक्षा को अब प्राइमरी स्तर पर ले जाना चाहिए। उसके लिए चार वर्ष पहले पेरिस में 5-6 हजार प्राइमरी स्कूल के शिक्षकों की बैठक बुलाई गई और उन लोगों ने अनुमोदन किया कि एक बार योग का यह प्रशिक्षण अपने बच्चों के

बीच चालू करना चाहिए। योग का यह प्रशिक्षण अब चालू हो गया है, प्राइमरी और हायर सेकेण्डरी स्कूलों में। यह स्कूलों का और लोकल बोर्ड का अपना दायित्व है। सरकार इसको स्वीकृति देती है और अनुमोदित करती है। सरकार योग प्रशिक्षण के लिए नहीं, बल्कि उसके अनुमोदन के लिए उत्तरदायी है।

अब वहाँ बच्चों को क्या सिखाते हैं? एक तो योग निद्रा सिखाते हैं, और दूसरी चीज सिखाते हैं अन्तर्धारणा, जिसे राजयोग का छठा सोपान मानते हैं। धारणा का मतलब अपने मन के अन्दर किसी स्वरूप को, किसी मूर्ति को, किसी शक्ल को, किसी रंग को, किसी शब्द को विकसित करना, जिससे बच्चे की कल्पना शक्ति और धारणा शक्ति का विकास होता है। यही कल्पनाशक्ति और यही धारणा शक्ति बाद में उसे मदद करती है।

हमारे एक और शिष्य हैं, जो फ्रेंच हैं, मगर स्विट्ज़रलैंड में रहते हैं। वहाँ मास्टर साहब हैं, सोलह साल का अनुभव है। उनके दिमाग में एक बात घुस गई कि बच्चे के मस्तिष्क के विकास, चरित्र परिवर्तन और भावनाओं के विकास के लिए सीधा निर्देश नहीं देना चाहिए। सीधा निर्देश किसको कहते हैं? ऐसा मत करो, तुम्हें चोरी नहीं करनी चाहिए, झूठ नहीं बोलना चाहिए, मारना नहीं चाहिए, यह सीधा निर्देश है और यह सब घरों में होता है, चाहे वह हिन्दू धर्म का हो, या इस्लाम का या ईसाई धर्म का। पर कहीं पर भी सीधा निर्देश काम नहीं किया, बल्कि उसका परिणाम हमेशा उल्टा रहा। तो उस व्यक्ति ने सोचा कि कुछ चित्रों के द्वारा बच्चे के दिमाग के अन्दर के संस्कारों को बदला जा सकता है या नहीं।

उसने दो चीजों पर प्रयोग किया, यंत्र और मंडल। यह मैं तंत्र पर बोल रहा हूँ थोड़ा-सा। मण्डल किसको कहते हैं? शिव की मूर्ति, राम की मूर्ति, कृष्ण की मूर्ति, ये मण्डल हैं। तंत्र शास्त्र में तीन चीजें हैं—मंत्र, यंत्र और मण्डल। उसने एक तो मण्डल के मस्तिष्क पर प्रभाव को आँका, साथ ही यंत्र को भी आजमाया। यंत्र का अर्थ होता है ज्यामितीय आकृति जैसे त्रिकोण या चतुर्भुज जो हमलोगों के यहाँ बहुत जगह पर दिवार पर लाल स्याही से बना रहता है।

उसने स्विट्ज़रलैंड के स्कूल में जब योग सिखाना शुरू किया तो आसन-

प्राणायाम के साथ-साथ धारणा की भी कक्षाएँ लीं। धारणा की कक्षा में उसने बच्चों से कहा कि तुम यंत्र बनाओ। उसने बच्चों को कई प्रकार के यंत्र और मण्डल दिखाये। जब वह भारत से वापस गया था तो यहाँ से सैकड़ों तस्वीरें ले गया था जो बाजार में अठन्नी-चवन्नी में मिलती हैं। काली की तस्वीर मिलती है, गणेश जी की मिलती है, हनुमान जी की मिलती है, सब अपने साथ ले गया। उसने सोचा कि मैं इन मण्डलों का उपयोग अपने बच्चों के मानसिक विकास के लिए करूँगा।

अब बतलाओ, हमलोग इस धर्म में पैदा हुए, पर हमको पता ही नहीं है कि किसी देवी-देवता या यंत्र के चित्र का किसी के दिमाग पर, किसी की बुद्धि पर, किसी के आचार-विचार पर क्या असर पड़ता है। हमलोगों को समझ में नहीं आया और हमलोग निन्दा भी करते आये हैं। बुरा नहीं मानना, आप में से कई लोग इस श्रेणी में आते होंगे। लेकिन यहाँ ईश्वर की बात नहीं हो रही है, परन्तु मनुष्य के प्रतिभा के विकास की बात हो रही है। उस शिक्षक ने इन चीजों पर जो प्रयोग किया वह बहुत ही प्रसिद्ध है और आज फ्रांस एवं स्विट्ज़रलैंड के प्राइमरी व हायर सेकेण्डरी स्कूलों में योग निद्रा, आसन-प्राणायाम तथा यंत्र-मण्डल की धारणा, इन चीजों के साथ योग किया जाता है। मैं समझता हूँ कि यह भारत के विद्यालयों और शिक्षण संस्थाओं में भी लागू होना चाहिए। आप लोग तो योग की प्रतिभा से परिचित हैं, पर इस योग की प्रतिभा को हम किस तरह से बच्चों के क्षेत्र में लाएँ, इस पर आप लोगों को ठीक तरह से सोचना होगा और वैज्ञानिक पद्धति का विकास करना होगा। यह वैज्ञानिक पद्धति आवश्यक है बच्चों के लिए, और यदि हम उन पर ठीक से असर डाल सकें तो बहुत अच्छा होगा।

अब एक अनुभव बताता हूँ योग निद्रा का। एक छोटा-सा बच्चा था चार साल का, मेरे साथ आश्रम में रहता था। वह मध्य प्रदेश का था और घर-परिवार छोड़कर आ गया मेरे पास रहने। मैंने उस पर प्रयोग शुरू किया। क्या प्रयोग किया? उसको योग निद्रा का अभ्यास कराया और योग निद्रा की अवस्था में उसे बहुत-सी बातें सिखाईं। सीधा निर्देश, 'इदं कर्तव्यम्', यह करना, आज तक हमने उसको नहीं बोला है। उस वक्त हम उसको योग निद्रा के माध्यम से कुछ-न-कुछ सिखलाते थे। एक साल तक हमने उसको सिखलाया, फिर दूसरे साल से सिखलाना बंद कर दिया। वह बच्चा इतना मेधावी निकला कि क्या बताऊँ। दस-ग्यारह साल की उम्र में विदेश भेजा। पहले बेलफास्ट गया जहाँ 5 महीने प्रोटेस्टेंट और कैथोलिक लोगों के बीच योग सिखाया। बहुत मुश्किल काम है बेलफास्ट में योग सिखाना। कैथोलिक को योग सिखाओ तो प्रोटेस्टेंट कहता है, वहाँ योग क्यों सिखलाता है, मारेंगे तुमको। और यदि प्रोटेस्टेंट को योग सिखाएँ तो कैथोलिक धमकाते हैं, दरवाजे पर धमकी देकर जाते हैं। वहाँ उसने योग सिखाया, उसके बाद ऑस्ट्रेलिया, यूरोप, अमेरिका गया और आज बिहार में योग विद्यालय का

प्रशासनिक उत्तराधिकारी है। चार साल की उम्र में उसने घर छोड़ा और 22-23 साल की उम्र में उसको वापस बुलाया, प्रशासनिक अधिकार दिया। उत्तरदायित्व उसके पास है, हमारे पास नहीं है।

ऐसे एक नहीं, अनेकों उदाहरण प्रस्तुत किये जा सकते हैं जहाँ हम बच्चों के आंतरिक जीवन को समझकर रूपान्तरित कर सकते हैं। हम अभी सिर्फ बच्चों के बौद्धिक जीवन को समझते हैं, बाहर के दिमाग को ही प्रभावित करना चाहते हैं। मगर बाहर के दिमाग पर जो लकीर खींचोगे, जो भी निर्देश दोगे वे ज्यादा देर रहेंगे नहीं। बच्चे उसको मिटा देते हैं। बहुत आदर्शवाद उन पर काम नहीं करता है। पर अगर तुम बच्चों को योग निद्रा का अभ्यास कराते हो या धारणा का अभ्यास कराते हो तब उनकी अन्तर्प्रतिभा का विकास होता है। अन्तर्प्रतिभा अवचेतन मन में है, सूक्ष्म शरीर में है, उसका विकास होना बहुत आवश्यक है। मैं नहीं समझता कि उसके विकास के बिना बच्चे के जीवन को एक दिशा दे सकते हो।

अब लोग मुझसे यह बात पूछते हैं कि किस प्रकार से योग विद्या का प्रसार देश भर में होगा। यह बात बहुत अच्छी है। सब लोग चाहते और जानते हैं कि योग ऐसी चीज है जो बच्चों और बड़ों के संस्कारों को सुधारती है। इसलिए इसके प्रशिक्षण की व्यवस्था होनी चाहिए। आपको शायद यह बतलाना आवश्यक है

कि शुरू-शुरू में पचास के दशक में जब मैं योग सिखलाता था तब मैं प्रतिदिन अकेला रहता था क्लास में, कोई आता ही नहीं था। यह हालत थी। एक बार मैंने एक लड़के को योग सिखाया तो दूसरे दिन उसके पिता ने उसका हाउस एरेस्ट कर दिया। हाउस एरेस्ट जानते हो न, 'खबरदार, कल से नहीं जाना वहाँ। साधु बनना है क्या तेरे को!'

उस समय हमने अपने काम को तीन चरणों में बाँटा। सबसे पहले लोगों को समझाना है, दिमाग में बात डालनी है। इसके लिए दस-बारह साल लगेंगे। फिर दूसरे चरण में योग सिखलाने वालों को तैयार करना है। पहला काम मैंने करीब-करीब पूरा कर दिया है जितना करना था। अब दूसरा काम है योग सिखलाने वालों को तैयार करने का। इसमें लाखों शिक्षकों की आवश्यकता है, और वे शिक्षक बहुत सुलझे हुए और प्रोफेशनल हों। योग बहुत व्यावहारिक विज्ञान है और इसके प्रचार के लिए शिक्षकों को अच्छी तरह से जानकारी देने की आवश्यकता है।

योग सिखलाने के लिए मैं यह जरूरी समझता हूँ कि योग को एक अलग फैकल्टी, एक स्वतंत्र विषय के रूप में स्वीकृत किया जाए। फिज़िकल ट्रेनिंग यानि शारीरिक प्रशिक्षण के साथ योग को जोड़ना वैज्ञानिक विचारधारा नहीं है। अभी चार साल पहले चेकोस्लोवाकिया के डाइरेक्ट्रेट ऑफ फिज़िकल ट्रेनिंग ने मुझे निमंत्रण दिया। मैंने जाने से इंकार कर दिया। मैंने कहा कि मैं फिज़िकल ट्रेनिंग तो जानता नहीं हूँ, और न मैं योग को फिज़िकल ट्रेनिंग मानने को तैयार हूँ। यदि आप योग को योग मानने के लिए तैयार हों तो मैं निमंत्रण स्वीकार करता हूँ। खैर उस साल बहुत देर हो चुकी थी, फिर अगले साल उन्होंने योग परिषद की तरफ से मुझे बुलाया और मैं गया भी।

मैंने आप लोगों से यह बात इसलिए कही है कि योग को एक विशिष्ट फैकल्टी के रूप में इस देश में रखना होगा। योग को किसी दूसरी फैकल्टी की छत्र-छाया की आवश्यकता नहीं है। योग इस युग की मुख्य माँग है। यह माँग आज आपके यहाँ भले ही कम है, क्योंकि आप अभी भी देहाती हैं। यह तो खुशी की बात है, मैं आपके बारे में खराब बात नहीं बोलता हूँ। देहाती होने के नाते आप उन तकलीफों से परिचित नहीं हैं जो लंदन, न्यूयार्क, मॉस्को, टोकियो, बेलफास्ट, कलकत्ता या बम्बई के लोगों को हैं। लेकिन जल्द ही ऐसा समय आएगा जब आपको भी वही परेशानियाँ होंगी। इसलिए योग को एक विशिष्ट फैकल्टी या विभाग के रूप में विकसित करना होगा। समाज कल्याण और स्वास्थ्य के लिए इस विद्या का एक सुंदर संस्कृति के रूप में विकास करना होगा।

आप इस बात को अच्छी तरह से समझें। संस्कृति किसी भी देश के लिए बहुत आवश्यक चीज है। उसी संस्कृति पर सभी चीजें निर्भर करती हैं। मैं राजनैतिक चिन्तक नहीं हूँ, पर बहुत-सी चीजें जानता हूँ। मेरा यह यकीन है कि

संस्कृति के आधार पर ही राजनैतिक चिन्तन ठीक हो सकता है। यदि सांस्कृतिक आधारशिला कमजोर रहेगी तो राजनैतिक चिन्तन भी ठीक नहीं हो सकता, और अगर राजनैतिक चिन्तन ठीक से नहीं होगा तो आप जानते ही हो क्या होता है, वह कहने की आवश्यकता नहीं।

योग एक संस्कृति है। संस्कृति इसलिए है कि यह तुम्हारे शरीर, मन, भावनाओं और दर्शन को निरंतर संस्कारित करती जाती है। संस्कृति का मतलब केवल संगीत, नृत्य और कला नहीं होता। यह संस्कृति की बहुत सीमित परिभाषा है। संस्कृति का मतलब होता है संस्कारों से संबंध रखने वाली चीज। संस्कार तुम्हारे अन्दर की मनोवृत्ति, बाहर के चाल-चलन, तुम्हारे घर में खान-पान, तुम्हारे व्यवहार, शिष्टाचार, इन सबको कहते हैं। आज हमारे देश में संस्कृति आहत हो चुकी है, उसे चोट लग चुकी है। अब आप मान सकते हैं कि उसको ठीक करने के लिए केवल राजनीति से होकर गुजरना है, तभी सफलता मिलेगी, लेकिन मैंने इस पर स्वतंत्र चिन्तन किया है, अतीत पर आधारित चिन्तन नहीं।

संस्कृति के पुनरुत्थान के लिए, संस्कृति की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए किसी भी प्रकार के इंकलाबी नारे या हल्ला-गुल्ला की जरूरत नहीं होती। संस्कृति को पारिवारिक और व्यक्तिगत स्तर पर उठाना पड़ता है। उसके लिए किसी दर्शन, किसी फिलॉसफी की भी जरूरत नहीं पड़ती है। उसके लिए दैनिक अभ्यास की जरूरत पड़ती है। इस पर मेरा सरल और स्पष्ट विचार यही है कि योग के व्यावहारिक पक्ष को आप लोग प्राइमरी, मिडिल और हायर सेकेण्डरी स्कूल तक ले जाइये। मैं व्यावहारिक पक्ष की बात बोल रहा हूँ। पुन: हायर सेकेण्डरी स्कूल के बाद जब बच्चे विश्वविद्यालय में जाते हैं, तब आप वहाँ इसका सैद्धान्तिक पक्ष रख सकते हैं। यह रखना जरूरी रहेगा ताकि योग को एक बौद्धिक परिभाषा और अभिव्यक्ति मिले, और लोग इस विद्या को समझ सकें। परन्तु सवाल केवल इतना ही है कि बिल्ली के गले में घंटी कौन बाँधेगा?

हर मनीषी इस बात को स्वीकार करता है कि योग से संस्कार बनता है। ज्यादा संस्कार न भी बने तो योग करने वाला बच्चा कम-से-कम स्वास्थ्य के मौलिक सिद्धांतों के प्रति सजग तो हो ही जाएगा। यह चेतना उसके मन में जागृत

हो जाएगी कि मैं प्रात:काल उठकर सूर्य के सामने खड़े होकर, दोनों हाथों को जोड़कर, सूर्य से निकलने वाली जो लाभदायक अल्ट्रावायलेट रश्मियाँ हैं, जो प्राण शक्ति है, उसे ग्रहण करूँ और वहाँ पर कुछ देर के लिए, आधा मिनट ही सही, चित्त की वृत्तियों को एकाग्र करूँ। इतना जो परिवर्तन बच्चे के दिमाग में योग के द्वारा हुआ, क्या वह कम है? कहीं-न-कहीं से तो आपको शुरू करना है। लम्बी-चौड़ी बातों से नहीं, बल्कि इसके लिए व्यावहारिक शिक्षा की प्रबल आवश्यकता है।

गुरु-शिष्य या आचार्य व अन्त:वासियों के बीच का विज्ञान मनमर्जी का विज्ञान नहीं है। ऐसा नहीं कि किताब उठा ली और अगले दिन सबेरे शुरू कर दिया। इसके बारे में नियम और निषेध हैं। योग्य गुरु होना ही चाहिए। गुरु का मतलब क्या? यहाँ ब्रह्मश्रोत्रिय या ब्रह्मनिष्ठ गुरु की बात नहीं बोल रहा हूँ, योग्य गुरु वह है जिसको उस विषय का गहन ज्ञान है। पर इसका प्रबंध करने में काफी कठिनाई होती है। हालाँकि हम मुंगेर से औसतन 50-60 शिक्षक प्रति महीने तैयार करके निकाल रहे हैं और यह कार्यक्रम कुछ वर्षों से चल रहा है, फिर भी ऐसा लगता है कि ऊँट के मुँह में जीरा। कुछ पता ही नहीं चलता कि ये शिक्षक कहाँ खप जाते हैं! इसके बारे में आप लोग गम्भीरता से सोचें और सोचकर उस पर काम करें। इसी दृष्टिकोण से मैंने मुंगेर के छोटे-से आश्रम का, जहाँ पहले 30-40 के शिक्षण की व्यवस्था थी, उसका विकास किया है। अब एक साथ प्रति महीने 600-700 का प्रशिक्षण हो सकता है। हम यही चाहते हैं कि योग का प्रशिक्षण, चाहे स्कूलों में हो या पंचायतों के द्वारा हो, मगर होना जरूर चाहिए।

–12 जुलाई 1983, बी. एन. कॉलेज, पटना

सुसंस्कृत सम्राट्

फ्रांस का राजा हेनरी चतुर्थ एक दिन पेरिस नगर में अपने अंगरक्षकों तथा उच्च अधिकारियों के साथ कहीं जा रहा था। मार्ग में एक भिखारी ने अपनी टोपी सिर से उतार कर मस्तक झुका कर उसका अभिवादन किया। हेनरी ने भी अपनी टोपी उतार कर, सिर झुका कर भिखारी का अभिवादन किया।

यह देखकर एक उच्च अधिकारी ने चकित स्वर में कहा, 'श्रीमान्! एक भिखारी का आप इस प्रकार अभिवादन करें, यह क्या उचित है?'

हेनरी ने सरलता से उत्तर दिया, 'फ्रांस का सम्राट् एक भिखारी जितना सभ्य और सुसंस्कृत नहीं है, यह मैं सिद्ध नहीं करना चाहता।'

– संकलित

धारणा में व्यवधान

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

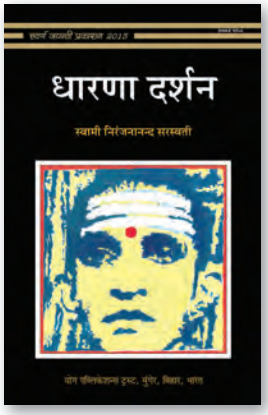

धारणा का अभ्यास करने से मन की शक्तियाँ एकाग्र होने लगती हैं। जैसे-जैसे मानसिक विक्षेप कम होते हैं, आपके सूक्ष्म कोष एक-दूसरे से समस्वरित होते जाते हैं और आप बाह्य अनुभवों से आन्तरिक अनुभवों में प्रवेश करने लगते हैं। जब आप धारणा में स्थिर हो जाते हैं तब आप बाह्य अनुभवों की सीमा पार कर जाते हैं और इसी समय आपकी प्रगति में बाधा डालने अनेक व्यवधान उपस्थित होने लगते हैं। इनमें अतीन्द्रिय दृश्य, कुण्डलिनी जागरण, कामुकता, बीमारी, मोहभंग, अतिसंवेदनशीलता और बेतरतीब अभ्यास सम्मिलित हैं। ये तो अन्दर से उत्पन्न होने वाले व्यवधान हैं। इनके अतिरिक्त अन्य व्यवधान भी हैं, जो बाहर से उत्पन्न होते हैं। इनमें आते हैं—अत्यधिक मेलजोल, जीवन पद्धति एवं साधना में अनियमितता तथा असन्तुलित आहार।

सूक्ष्म, अतीन्द्रिय दृश्य पहली बाधा है, जिसका सामना आप धारणा के मार्ग में करेंगे। आप सूक्ष्मलोकों के सुन्दर देवी-देवताओं या अप्सराओं को देखेंगे जो आपको साधना से विचलित करने आते हैं। सूक्ष्म दृश्य तो साँप, सिंह या बाघ जैसे जानवरों या राक्षसों और भूतों के रूप में भी आ सकते हैं। यदि इन परिस्थितियों में आप शान्त और अप्रभावित रह सकें तो आपकी साधना अबाधित रूप से प्रगति करेगी।

ऐसे वर्णन मिलते हैं कि गहन साधना काल में विभिन्न योगियों, संतों और पैगम्बरों को ऐसे दृश्यों का अनुभव हुआ है। जब ईसा मसीह रेगिस्तान में चालीस दिनों तक उपवास कर रहे थे तो उन्हें ऐसे दृश्यों का अनुभव हुआ था। इसी प्रकार महात्मा बुद्ध को भी बोधि-वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त होने के पूर्व अनेक पारलौकिक दृश्य दिखाई पड़े थे।

कुण्डलिनी जागरण दूसरी कठिनाई है जो धारणा काल में उत्पन्न होती है। वस्तुत: आप धारणा की अवस्था में तब तक प्रवेश नहीं कर सकते जब तक कुण्डलिनी का जागरण एक सीमा तक नहीं होता। विभिन्न चक्रों पर धारणा की जाती है। अत: यह भी एक सीमा तक जागरण का संकेत है, जो तब तक नहीं होता जब तक कुण्डलिनी सुषुम्ना पथ में नहीं चढ़ती है। जैसे ही कुण्डलिनी शक्ति चक्रों का भेदन प्रारम्भ करती है, धारणा प्रारम्भ होती है। धारणा की साधना में यदि

कुण्डलिनी का अनुभव तीव्र हो तो आपको साधना जारी रखने हेतु समर्थ गुरु एवं अनुकूल परिवेश की आवश्यकता होगी।

कामुकता एक अन्य बाधा है जिसका अनुभव व्यक्ति को धारणा के मार्ग में होता है। जब धारणा गहन होने लगती है तब निम्नस्थ केन्द्रों में स्वत: तीव्र काम भावना उत्पन्न होती है। कभी तो इसे सहन किया जा सकता है, पर धारणा में यह बार-बार उत्पन्न होने लगती है। जैसे-जैसे धारणा की साधना में प्रगति होती है, मन नियंत्रित होता जाता है, प्राण और चक्र शुद्ध होते जाते हैं। इस परिशुद्धि के कारण वीर्य अधिक उत्पन्न होता है जिसके कारण कामुकता बढ़ जाती है। जब धारणा की

साधना में कामुकता उत्पन्न हो तो अपना मार्ग प्रशस्त करने हेतु आपको समर्थ गुरु के मार्गदर्शन की आवश्यकता होगी।

बीमारी एक अन्य व्यवधान है जो धारणा के मार्ग में आयेगा। धारणा की साधना से शारीरिक शुद्धि की प्रक्रिया तेजी से प्रारम्भ होती है। फलस्वरूप शीघ्रातिशीघ्र निष्कासित हो जाने के लिए अस्वास्थ्यकर तत्त्व उत्पन्न होने लगते हैं। वे तत्त्व जो पहले सुषुप्त थे, अब बीमारी का रूप ले सकते हैं। जब बीमारी शरीर में प्रकट होती है तो यह शुद्धि की प्रक्रिया के परिणाम स्वरूप होती है। इसलिए आप चिन्ता न करें। ध्यान की क्रमबद्ध प्रक्रिया से बीमारियाँ स्वयं शान्त हो जायेंगी। अत: ऐसे समय में धारणा के अभ्यास को न छोड़ें, बल्कि उन्हें जारी रखें। फिर भी इन परिस्थितियों में दवा से बचें क्योंकि यह शुद्धि-प्रक्रिया को बाधित कर देगी। गरिष्ठ और घी-तेल युक्त भोजन न करें, बल्कि हल्का और सादा भोजन लें या केवल दूध और फल लें।

धारणा के मार्ग में साधना से मोहभंग हो जाना भी एक अन्य बाधा है। इस अवस्था में आपकी प्रगति का सही-सही अनुमान करना कठिन होगा। उत्साह के कारण यह सोचकर कि धारणा शीघ्रता से सिद्ध की जा सकती है, आप अपनी उपलब्धि को अधिक मान ले सकते हैं। परन्तु आगे बढ़ने पर यह सोचकर आपको मोहभंग हो जायेगा कि धारणा की सिद्धि इतनी सरल नहीं है। मन को स्थिर करने और धारणा एवं मानस दर्शन की क्षमता को विकसित करने में समय लगता है।

जब अभ्यास ठीक से नहीं चलेगा, तब आप अपनी प्रगति के विषय में परेशान हो सकते हैं और संदेह करने लगेंगे कि कोई लाभ हो भी रहा है या नहीं। दूसरी

ओर, जब कुछ सफलता मिलेगी तब आप अत्यधिक प्रसन्न हो जायेंगे कि आप अब समाधि के निकट पहुँच गये हैं। साधना के क्रम में ऐसे उतार-चढ़ाव आयेंगे। साधना के सम्बन्ध में ऐसी भ्रान्तियों से आप न निराश हों ओर न अति उत्साहित हों। इन उतार-चढ़ावों के प्रति निरपेक्ष भाव रखकर धैर्यपूर्वक साधना में लगे रहने से ही वास्तविक प्रगति होगी।

अतिसंवेदनशीलता—जब एकाग्रता का विकास होता है तो संवेदनशीलता में भी वृद्धि हो जाती है। एक सुई का गिरना आपके मस्तिष्क में बिजली की कड़क सा लगेगा। विशेष प्रकार की गंध, ध्वनि, दृश्य और भाव, जिन पर आप कभी पूर्व में ध्यान भी नहीं देते थे, आपको क्षुब्ध एवं उद्विग्न कर देंगे। ये अवस्थाएँ हैं जिन्हें आपको पार करना होगा, पर यदि आप में दृढ़ता है तो आपको सफलता अवश्य मिलेगी।

बेतरतीब अभ्यास भी धारणा में एक बाधा है। एक अभ्यास करना, फिर उसे छोड़ कर कोई नया अभ्यास करना, इससे आपके बहुमूल्य समय और ऊर्जा के नष्ट होने की संभावना है। जब आप कोई अभ्यास प्रारम्भ कर देते हैं, तो जब तक उसके अन्त तक न पहुँचें, उसे न छोड़ें और न नया अभ्यास प्रारम्भ करें। जब तक एक अभ्यास में सिद्धि न मिले, तब तक उसी में दृढ़ता से लगे रहना ही उत्तम है। थोड़ी देर एक अभ्यास, फिर थोड़ी देर दूसरा अभ्यास करने से आप ध्यान तक नहीं पहुँच पायेंगे। अलग-अलग अभ्यास आपको भले ही रोचक लगें, पर उनका अन्त भी वहीं हो जायेगा, जैसे एक व्यक्ति सौ कुएँ खोदे और हर बार एक स्थान पर कुछ फीट खोदने के बाद, नयी जगह पर नयी खुदाई शुरू कर दे। उसे जल कहीं नहीं मिलेगा। इसलिए एक अभ्यास को ही पकड़िये और उसकी गहराई में प्रवेश कीजिये, तभी आपको लक्ष्य प्राप्त होगा।

अत्यधिक सामाजिक मेल-जोल भी धारणा के अभ्यास की एक बाधा है। यदि आप गहन साधना में जाना चाहते हैं तो आपको अपने सामाजिक सम्पर्क को कम करना पड़ेगा। विभिन्न प्रकार के लोगों के साथ संगति मन को विक्षिप्त करती है। हर प्रकार की उत्तेजना और विक्षिप्तता धारणा के पथ को अवरुद्ध करती है।

जीवनशैली एवं साधना में अनियमितता सबसे बड़ी बाधा है और अनेक व्यक्तियों के लिए इस पर विजय प्राप्त करना सबसे कठिन कार्य है। धारणा की सिद्धि के लिए मन और शरीर को संतुलित होना चाहिए, स्थिर होना चाहिए। अनियमितता से असंतुलन और बेचैनी उत्पन्न होती है। भोजन का समय, निद्रा का समय, काम का समय, मनोरंजन और ध्यान का समय, सबको नियमित रखना महत्त्वपूर्ण है। एक बार आपने अपना कार्यक्रम नियमित बना लिया, फिर उससे विचलित न हों। नियमित जीवन प्रणाली एवं साधना आध्यात्मिक प्रगति और धारणा का आधार है।

असंतुलित भोजन भी एक बाधा है। पाचन प्रणाली अत्यन्त कोमल है। जब हम चेतना की गहन अवस्थाओं में जाते हैं, पाचन शक्ति मन्द हो जाती है। अत: धारणा में प्रगति के लिए आप न अधिक खायें और न अधिक उपवास करें। नियमित सात्त्विक भोजन अत्यावश्यक है। जैसे-जैसे आपका शरीर साधना से परिशुद्ध होता जाता है, उस अवस्था में थोड़ी-सी भी अनियमितता आपका संतुलन बिगाड़ देगी। जब तक आपको पूर्ण नियंत्रण प्राप्त नहीं हो जाता, एक कौर ज्यादा या कम भोजन आपकी सारी व्यवस्था बिगाड़ देगा। पूर्ण नियंत्रण प्राप्ति के बाद आप चाहे जो कुछ खा सकते हैं।

तनाव भी धारणा की बाधाओं में एक है। यह सदा स्मरणीय रहे कि धारणा तनाव की अवस्था नहीं है। मन की सच्ची एकाग्रता विश्रान्त अवस्था में ही प्राप्त हो सकती है। तनावग्रस्त व्यक्ति एकाग्र नहीं हो सकता है। जब आप सहज और स्थिर भंगिमा में रहना एवं शरीर तंत्रिकाओं, मस्तिष्क और मन को विश्रान्त रखना सीख लेते हैं, तभी धारणा का अभ्यास प्रारम्भ करें।

वस्तुत: विश्रान्ति और धारणा परस्पर सम्बन्धित हैं। अपने शरीर के किसी अंग विशेष को तब तक आप विश्रान्त नहीं कर सकते जब तक उस पर अपना मानसिक अवधान केन्द्रित नहीं कर लेते। उसी प्रकार अपने मन को आप तब तक केन्द्रित नहीं कर सकते, जब तक आप पूर्ण विश्रान्त नहीं होते। एक तनावग्रस्त मन को एकाग्र करना वैसा ही है, जैसे एक अत्यन्त तनी हुई डोरी को और अधिक तानना। इससे एकाग्रता के स्थान पर विखण्डन और मानसिक स्वास्थ्य विकार ही हाथ लगेगा। अत: क्रमबद्ध ध्यान-प्रक्रिया द्वारा ही एकाग्रता का धीरे-धीरे विकास करना चाहिए। जब आप थके या तनावग्रस्त हों, तब जबरदस्ती धारणा का अभ्यास न करें।

पेशीय और तन्त्रिका तनाव का धारणा से कोई लेना-देना नहीं है। अभ्यास में सफलता शारीरिक संवेदना या भावना से नहीं मापी जा सकती है। कुछ लोग जब भ्रूमध्य में तनाव अनुभव करते हैं तो सोचते हैं कि वे धारणा कर रहे हैं, पर वास्तव में वे तो अपने लिए सरदर्द या अन्य परेशानी उत्पन्न कर रहे हैं। तनाव रहित अवधान आवश्यक है। धारणा के अभ्यास में लेशमात्र तनाव भी नहीं होना चाहिए। मन पर नियंत्रण किसी प्रकार के जोशीले प्रयास से नहीं आ सकता, बल्कि वह अविरल, शान्त, नीरव अभ्यास और उत्तेजना एवं अशान्ति से बचकर ही प्राप्त हो सकता है।

यदि आप धारणा की साधना में गम्भीर हैं, तो ये कुछ मुख्य बिन्दु हैं जिनके प्रति आपको सजग रहना होगा। यदि आप इस साधना में गहराई तक नहीं भी जाना चाहते हों, फिर भी आपको इनसे अपार लाभ होगा। यह आपकी नाड़ियों को शान्त करेगा, मन को स्पष्टता प्रदान करेगा, आपके स्वभाव और स्वास्थ्य में सुधार लायेगा, आपकी आयु में वृद्धि करेगा तथा जीवन के प्रति आपको एक नयी दृष्टि प्रदान करेगा।

–'धारणा दर्शन' से उद्धृत

सत्यम् वाणी

कई देशों की पूर्व में आपसी दुश्मनी रही है, जैसे ग्रीस और तुर्की, या भारत और पाकिस्तान। क्या आपको लगता है कि अगर इन देशों की सरकारें, राजनेता और मीडिया अड़चन न पैदा करें तो दोनों देशों के लोग आपसी भाईचारे और अमन-चैन के साथ रह सकते हैं? अन्यथा फिर दूसरा क्या उपाय है?

यह बड़ी मुश्किल चीज है। प्रकृति की एक स्वाभाविक प्रक्रिया के अनुसार सब होता है। इस स्वाभाविक प्रक्रिया के अंतर्गत कुछ पीढ़ियों के बाद दोनों देश आपस में दोस्त भी हो सकते हैं। एक छोटा-सा उदाहरण देता हूँ। दो हजार वर्षों तक चीन और जापान के बीच कोई राजनैतिक सम्बन्ध नहीं था। फिर बौद्ध-धर्म चीन पहुँचा। आचार्य दीपंकर के माध्यम से बौद्ध-धर्म तिब्बत पहुँचा और आचार्य पद्मसंभव के द्वारा वह चीन पहुँचा। वहाँ पहुँचकर बौद्ध-धर्म दावानल की भाँति फैलने लगा।

चीन से बुद्ध की शिक्षाएँ जापान भी पहुँची। जापानी लोग शिन्तो नामक एक जनजातीय धर्म को मानते थे। जब उन्हें बौद्ध धर्म की जानकारी मिली और उन्होंने बौद्ध साहित्य का अध्ययन किया तो वे इससे बड़े प्रभावित हुए। तब वे कुछ लोगों को अधिक जानकारी लाने के लिए सीधे भारत भेजना चाहते थे। पहले एक सौदागर भारत आने को तैयार हुआ। किसी कारणवश वह नहीं जा सका। फिर उन्होंने शिन्तो समुदाय के किसी संन्यासी को भेजना चाहा। वह भी नहीं जा सका। जापानियों ने

कई प्रयास किये, पर वे भारत पहुँच नहीं पाये। जब सीधे भारत से सम्पर्क नहीं हो सका तो जापानियों ने चीन के साथ सम्बन्धों में सुधार किया। चीन से राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित किया गया। तब जापानी विद्वान् चीन गये, संस्कृत का अध्ययन किया, फिर त्रिपिटक और अन्य बौद्ध साहित्य जापान ले आये। इस प्रकार कालान्तर में दुश्मन भी दोस्त बन जाते हैं।

आज भारत और पाकिस्तान के आपसी सम्बन्ध अच्छे नहीं हैं। संभव है कि अगली पीढ़ी यह सोचे कि लड़ाई-झगड़े से क्या फायदा, भारत का बाजार तो बहुत बड़ा है, सौ करोड़ की आबादी जो है। क्यों न हम आपसी व्यापार बढ़ाएँ? इस तरह की सोच से सब कुछ सरल हो जाएगा।

यह जीवन का व्यावहारिक दर्शन है और ऐन मौके पर यही दो देशों के आपसी सम्बन्धों का निणार्यक कारक बनता है। आखिर अंग्रेजों के साथ हमलोगों ने कितनी लड़ाई, कितना संघर्ष किया। गाँधीजी का संघर्ष असहयोग और अहिंसा पर आधारित था तो दूसरी ओर सुभाषचन्द्र बोस ने उनके खिलाफ आज़ाद हिन्द फौज ही खड़ी कर दी। गोली-बन्दूक से लड़ाई की। लेकिन आज हम दोनों अच्छे दोस्त बन गये है, क्योंकि हम जानते हैं कि उनके पास बहुत अच्छी टेकनोलॉजी है और वे लोग जानते हैं कि भारत में बहुत बड़ा बाजार उपलब्ध है। आज की पीढ़ी इसी तरह सोचती है। एक बार नयी पीढ़ी की आर्थिक और धार्मिक विचारधारा बदल जाए तो देशों के सम्बन्ध बिल्कुल बदल जाएँगे।

तुर्की और ग्रीस के बीच साइप्रस को लेकर समस्या है। वहाँ के आर्चबिशप मेरे अच्छे मित्र थे, हमलोगों का पत्र-व्यवहार चलता था। जब उन्हें वह जगह छोड़कर इंग्लैण्ड जाना पड़ा तो उन्होंने मुझे पत्र लिखकर सूचित किया कि यहाँ से पलायन करना पड़ रहा है। ये राजनैतिक और धार्मिक समस्याएँ इसलिए हैं कि लोगों की सोच सही नहीं है, उनका दृष्टिकोण गलत है। वे मात्र भौगोलिक और ऐतिहासिक दृष्टि से सोचते हैं। लेकिन कुछ चीजें भूगोल और इतिहास से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। जीवन की अपनी यथार्थताएँ हैं। रुपया-पैसा, व्यवसाय-व्यापार, बच्चे, उनका स्वास्थ्य, उनकी शिक्षा, इन सब चीजों के बारे में लोग नहीं सोचते। 'मैं मारा जाऊँगा तो भी कोई परवाह नहीं,' ऐसा सोचकर वे युद्ध में जाते हैं, घर में पत्नी विधवा हो जाती है, बच्चे अनाथ हो जाते हैं।

नहीं, हमें इस प्रकार नहीं सोचना चाहिए। 'मैं व्यर्थ में क्यों मारा जाऊँ, नहीं तो मेरे बच्चे भूखे मर सकते हैं,' जीवन के प्रति हमें एक व्यावहारिक दृष्टिकोण रखना चाहिए। ऐसे में परस्पर मित्रता का भाव अपने आप विकसित होगा। हाल में भारत और चीन के सम्बन्ध भी अच्छे नहीं रहे। लेकिन अब दोनों देशों के बीच मित्रता बढ़ रही है, क्योंकि दोनों अपनी-अपनी मुश्किलों के प्रति सजग हो रहे हैं। चीन को अपनी सीमाओं की रक्षा पर करोड़ों डॉलर खर्च करने पड़ रहे हैं। और भारत

को भी उस नो-मैन्स-लैण्ड की रक्षा पर करोड़ों-अरबों रुपये व्यय करने पड़ रहे हैं जिससे कुछ भी प्राप्त नहीं होता। न कोई राजस्व प्राप्त होता है, न कोई फसल या अनाज ही वहाँ से मिलता है। तो फिर राष्ट्रीय धन का अपव्यय क्यों? भारत ने इसको महसूस किया। चीन को भी कुछ ऐसा ही लगा। फिर दोनों के आपसी सम्बन्ध थोड़े से सुधरे। आखिर हमें तो व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाना होगा न? राजनीति राजनेताओं या मीडिया पर निर्भर नहीं है। वह जनता के व्यावहारिक दृष्टिकोण के अनुसार चलती है।

हमलोग निर्णय करते हैं कि क्या होना चाहिए, मीडिया नहीं। यदि इस देश के लोग, यदि ग्रीस के लोग, यदि तुर्की के लोग सोचने लग जाएँ कि हम कैसी बेवकूफी कर रहे हैं, अपने देश की सेना और सीमाओं की सुरक्षा पर कितना अनावश्यक खर्चा कर रहे हैं, तो इतिहास की धारा बदलेगी। यदि वे सोचने लग जायें कि हथियारों पर पैसे खर्च कर हम गरीब हो रहे हैं और हथियार बेचने वाले देश अमीर हो रहे हैं तो बात दूसरी हो जायेगी। हथियार बेचनेवाले देश समझते हैं कि ग्रीस और तुर्की के लोग मूर्ख-गँवार हैं जो हमारे हथियार खरीद कर आपस में लड़-मर रहे हैं। हमारा क्या जाता है, वे लड़ते रहें, हम उन्हें और हथियार बेचते रहेंगे।

इराक में वे यही तो कर रहे हैं। फ्रांस, इंग्लैण्ड और अमेरिका ने पहले इराक को अस्त्र-शस्त्रों से लैस किया और बाद में उसे ध्वस्त कर दिया। इस महाविनाश के दस-पन्द्रह साल बाद वे फिर से इराक को शस्त्रों से लैस कर देंगे। पन्द्रह साल में डबल सेल हो जाएगा। हम यह खेल जानते हैं, इसलिए वे हमें धोखा नहीं दे सकते। लेकिन बाकी दुनिया में तो उनका यह खेल चलता रहेगा।

वैसे दुनिया में लड़ाई कभी बन्द नहीं होगी। संघर्षों से ही दुनिया में नयी सभ्यताएँ और संस्कृतियाँ आयी हैं। यदि सब संघर्ष बन्द हो जाए और सर्वत्र शान्ति व्याप्त हो जाए तो मानवता की गति, उसका विकास रुक जायेगा। घर्षण से ही गति उत्पन्न होती है। इंजिन का चक्का तभी चालू होता है जब घर्षण होता है। इसलिए संघर्ष होना चाहिए। तमोगुण, रजोगुण और सत्त्वगुण से बनी प्रकृति संघर्ष के लिए बाध्य करेगी।

सर्वत्र शांति स्थापित हो जाए तो जीवन नीरस और बेलौस नहीं हो जायेगा?

इसीलिए ऐसा कभी नहीं होगा। अगर बारह महीने गर्मी ही गर्मी हो या बसन्त ऋतु ही बनी रहे तो अच्छा नहीं है। बसन्त ऋतु भी हो, ग्रीष्म ऋतु भी हो, वर्षा ऋतु भी हो, काफी गर्मी पड़े, काफी वर्षा हो, सर्दी आये और अच्छी ठण्ढ पड़े तो बढ़िया है। परिवर्तन आवश्यक है। कभी तुम स्वेटर डाल लेते हो, कभी कमीज ही काफी होती है। जीवन में विविधता होनी चाहिए।

यह संसार संघर्ष से ही ऊँचा उठा है। जीवन में संघर्ष नहीं होगा तो उन्नति नहीं होगी। जिन जातियों में संघर्ष हुआ है वे जातियाँ ऊपर उठी हैं और जिनमें संघर्ष नहीं हुआ वे ऊपर नहीं उठ पाईं। उनको दो रोटी सुबह मिल जाए, दो रोटी शाम को मिल जाय, इसके आगे उनकी उन्नति पर पूर्ण विराम लग जाएगा। संघर्ष से ही समाज और व्यक्ति की उन्नति होती है । लड़ाइयाँ तो होंगी ही, दुनिया एक तत्त्व से तो बनी नहीं है, तीन तत्त्वों से बनी है। जब दुनिया तीन तत्त्वों से बनी हुई है तो यहाँ कभी तमोगुण का राज होगा, तो कभी रजोगुण का राज होगा। सतोगुणी लोग भी अपने यहाँ हैं और रजोगुणी लोग भी हैं। लोगों की बात छोड़ो, तुम्हारे अंदर भी तो तीनों गुण है। तुम देखो अपने अंदर, तीनों गुणों के मेल से मन बना है। पाँच तत्त्वों के योग से शरीर बना है।

आज पाकिस्तान-हिन्दुस्तान में झगड़ा होता है, पर एक दिन सब निपट जायेगा। पहले वैष्णव लोगों और शैव लोगों में बहुत झगड़ा होता था। लड़ाइयाँ होती थीं, सिर कटते थे, साम्राज्य बिखर जाते थे। शैवों और वैष्णवों में इतना झगड़ा था। उसकी झलक तुम पुराणों में पाओगे। मगर अभी एक ही मंदिर में शिवजी और

रामजी दोनों बैठे हैं, कोई झगड़ा नहीं है। पहले था कि वैष्णव मंदिरों में शैव को जाने ही नहीं देते थे, कहते थे, 'अरे हट! अछूत आदमी है।' पर अब सब ठीक है। अब वैष्णव लोग प्याज-लहसून भी खा लेते हैं, कुछ फर्क नहीं पड़ता। मेरे कहने का मतलब यही है कि लड़ाई-झगड़ा प्रकृति का एक नियम है और जब तक यह लड़ाई-झगड़ा है तब तक मनुष्य उन्नति करता है। जिस दिन लड़ाई-झगड़े दुनिया में समाप्त हो जायेंगे, सारी दुनिया खत्म हो जायेगी।

जहाँ तक जातियों, सम्प्रदायों और देशों का सवाल है, बहुत-सी पुरानी बातें अब सच नहीं हैं। पिछले दो हजार वर्षों में लोगों के बीच इतना मिश्रण हुआ है कि कौन किस जाति या देश का है, यह कहना कठिन है। तुमको बिहार में यूनानी लहू मिलेगा और यूनान में बिहारी लहू। लगभग दो हजार साल पहले सिकन्दर भारत आया और लड़ाई जीतने के बाद यूनान लौट गया, पर उसके लोग यहाँ रह गये। उसके सेनापति पटना तक आये और वे पराजित हो गये। हिन्दू राजाओं ने यूनानी लड़कियों से शादी कर ली। स्वाभाविक है कि बच्चों में यूनानी खून आयेगा। चन्द्रगुप्त मौर्य ने यूनानी सेनापति सेल्यूकस की बेटी, हेलेना से शादी कर ली। अशोक, अजातशत्रु और संघमित्रा जैसे उनके वंशजों में यूनानी खून का मिश्रण हो गया।

उसके बाद ब्रिटिश लोग आये। कई ब्रिटिश लड़कियों ने भारतीयों से और कई भारतीय लड़कियों ने ब्रिटिश लोगों से वैवाहिक सम्बन्ध कर लिया। वे ऐंग्लो-इण्डियन कहलाये। इसलिए अब कौन द्रविड़ है और कौन ऐंग्लो-सेक्सन है और कौन स्लाव है, यह कहना मुश्किल है। भारत से लाखों की संख्या में जिप्सी लोग रूस, रोमेनिया, बलगेरिया, फ्रांस और चेकोस्लोवाकिया चले गए। उनसे कितने ही बच्चे पैदा हुए, अब कौन कह सकता है कि जिप्सियों के बच्चे सभी जिप्सी ही हैं। कई बच्चे जिप्सी बाप और बुलगेरियन या रोमेनियन माँ से पैदा हुए हैं। ऐसी बातें हमेशा होती रहती हैं। तुम इसको रोक नहीं सकते। जातियों के बीच इतना मिश्रण हुआ है कि हम सभी लोग वर्णसंकर हो गये हैं।

इसलिए अब यह कहने का कोई फायदा नहीं है कि हमलोग आर्य हैं और तुमलोग सेमेटिक हो या इण्डो-यूरोपियन हो। वही बात राष्ट्रों के साथ है। आखिर राष्ट्र क्या है? राष्ट्र वह भू-भाग है जिसपर तुमने कब्जा कर लिया है क्योंकि तुम शक्तिशाली हो। अगर हम भारत का पुराना मानचित्र देखें तो बिल्कुल अलग दिखेगा। मेरे बचपन में बर्मा भारत का हिस्सा हुआ करता था। मैंने स्कूल के दिनों में बर्मा का भूगोल और इतिहास पढ़ा था। वह भारत का अंग था। बहुत दिन पहले इण्डोनेशिया, थाइलैण्ड, बाली, सुमात्रा, कम्बोडिया, ये सब भारत के उपनिवेश थे। कम्बोडिया जाकर देखो, वहाँ अंगोरवाट नाम का एक विशाल हिन्दू मन्दिर है। उसमें ब्रह्मा, विष्णु और अन्य देवी-देवताओं की मूर्तियाँ हैं। छोटी-मोटी नहीं, विशालकाय। अभी भारत सरकार उस मंदिर की मरम्मत के लिए वहाँ खर्चा कर रही है।

पश्चिम में भारत का साम्राज्य अफ़गानिस्तान तक था। आज भी तुम अगर वहाँ के ग्रामीण क्षेत्रों में जाओ तो बौद्ध विहारों और स्तूपों के खण्डहर मिलते हैं। वहाँ बौद्ध लोग बहुत थे, गाँव-गाँव में इतना कुछ देखा कि पहले मैंने सोचा अपनी डायरी में लिखूँ। फिर लगा कि कितना लिखूँ, सब जगह तो वही है।

स्वामीजी, हमलोगों ने इटली के एक संग्रहालय में कुण्डलिनी और सर्पों की प्रस्तर मूर्तियाँ देखी थीं।

रोमन काल के पूर्व और रोमन साम्राज्य-काल में भी रोम के उत्तर और पूर्व में कुछ अन्य जनजातियाँ थीं, जिन्हें रोमन लोग बारबेरियन कहा करते थे। वे लोग शिव की पूजा करते थे। इसलिए वहाँ शिवलिंग मिले हैं। वैटिकन के संग्रहालय में ऐसा ही एक शिवलिंग रखा हुआ है।

खैर यह तो धर्म का विस्तार हुआ, पर मेरे कहने का यह मतलब है कि जिस भी भू-भाग पर तुम्हारा कब्जा है, वही तुम्हारे राष्ट्र की परिभाषा है। यह परिभाषा तब तक मान्य है जब तक तुम शक्तिशाली हो। किसी समय तुम्हारे राष्ट्र की सीमाएँ अफ़गानिस्तान, बर्मा और थाइलैण्ड तक थी। जब तुम्हारे हाथों से ये निकल गये तो तुम्हारा राष्ट्र सिकुड़कर छोटा हो गया। बाद में तुम्हारी शक्ति और कम हुई तो पाकिस्तान और बंगलादेश कट कर अलग हो गये। अब पाकिस्तान और बंगलादेश पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है। तुम नहीं कह सकते कि ये तुम्हारे राष्ट्र के अंश हैं। हाँ, यह दावा जरूर कर सकते हो कि इन देशों का धर्म भले ही अलग-अलग हो, पर इनका लहू, इनकी भाषा और संस्कृति एक ही है। दिल्ली या पंजाब के पंजाबी और पाकिस्तान के पंजाबी में क्या फर्क है? वे भी पराठे खाते हैं और

दही की लस्सी पीते हैं। वही पंजाबी सेहरा यहाँ और वहाँ पहनते हैं। काश्मीर के पश्तूनों और बलूचिस्तान के पश्तूनों में क्या फर्क है? पश्तो भाषा ही तो बोलते हैं दोनों। संस्कृति में अंतर नहीं है, संगीत भी वही है, नाच भी वही है। मर्दों के बोलने का लहज़ा और औरतों के बोलने का लहज़ा बिल्कुल वही है। यहाँ तक कि अंध-विश्वास भी वही हैं।

भारत और पाकिस्तान के लोगों में आखिर क्या अन्तर है? भौगोलिक अन्तर के सिवा और कोई अंतर है क्या? दोनों देशों का संगीत वही है। तीन ताल, कहरवा, चौताल, सभी लय-ताल एक ही हैं। गाने की शैली, आलाप और गमक सब एक जैसे हैं। खाना बनाने का तरीका एक जैसा है। मसाला वही, नाम वही, खाने के तौर-तरीके वही। ऐसा नहीं है क्या? भाषा भी वही है, शारीरिक बनावट वही है, सनक और नखरा भी वही है, फिर अन्तर कहाँ है? जायदाद के बटवारे में। दो भाइयों ने अपनी जायदाद का बटवारा कर लिया है।

छोटका भाई और बड़का भाई, दोनों आपस में नहीं लड़ते क्या? हमलोग न्यारे हो गए हैं। जबरदस्ती न्यारा होना पड़ा तो आपस में झगड़ा करते हैं, पर कुछ दिन में खोपड़ी ठीक हो जाएगी। मजहब तो केवल एक मुद्दा है, झगड़े का असली कारण नहीं है। हम आपस में इसलिए नहीं लड़ रहे कि वे मुसलमान हैं और हम हिन्दू, बल्कि इसलिए लड़ रहे हैं कि हम भाई थे, कुछ मुद्दों की वजह से जमीन-जायदाद का बटवारा हो गया और हम अलग हो गए। दो भाइयों का जमीन-जायदाद को लेकर झगड़ा होता है न, कि यह खेत बंजर है, मुझे वह खेत मिलना चाहिए था। वही झगड़ा चल रहा है। धर्म का झगड़ा कुछ नहीं है और असल में देखा जाए तो इस्लाम और वेदान्त में कोई अंतर है ही नहीं। न वेदान्त मूर्ति-पूजा में विश्वास रखता है, न इस्लाम। इस्लाम का पहला मंत्र है– *ला इलाहा इल्लल्लाह*, एक अल्लाह के सिवा दूसरा और कोई नहीं। यहाँ संस्कृत में हम वही चीज कहते हैं– *एको ब्रह्म द्वितीयो नास्ति।* इस्लाम में हाथ-पैर धोये बिना इबादत नहीं होती और हमलोग भी हाथ-पैर धोकर ही मंदिर में जाते हैं। दार्शनिक दृष्टि से वेदान्त और इस्लाम समान हैं।

हर धर्म के दो पक्ष होते हैं, एक है कर्मकाण्ड और दूसरा है दर्शन। इस्लाम का दर्शन सूफी कहलाता है। सूफी शब्द यूनानी शब्द सोफिया से आया है जिसका अर्थ होता है विद्या। सूफी का मतलब हुआ ब्रह्मविद्या। सूफी संत क्या कहते हैं? ईश्वर मेरा प्रियतम है और मैं उसका प्रेमी। ईश्वर और मेरे बीच प्रेम का सम्बन्ध है, जबकि मेरे और तुम्हारे बीच वासना का सम्बन्ध है। प्रेम को सूफी लोग इश्क कहते हैं। असली चीज से प्रेम करने को इश्क-हकीकी कहते हैं, और अस्थायी, असत् चीजों से प्रेम इश्क-मजाजी कहलाता है। तुम अपने बच्चों से, अपने परिवार से, अपने धन से, अपनी जमीन-जायदाद से या अपने शरीर से जो प्रेम करते हो वह इश्क-मजाजी है।

सूफी लोग कहते हैं कि इश्क-हकीकी ही सच्चा मार्ग है। इश्क-हकीकी और भक्ति एक ही चीज है। इसी तरह इश्क-मजाजी और वासना भी एक ही चीज है। सूफियों की यह जो शिक्षा है, यही वेदान्त की भी शिक्षा है। वेदान्त की अभिव्यक्ति भक्ति के रूप में होती है और सूफियों में भी भक्ति होती है। सूफियों की संगीत में रुचि रहती है, हम कीर्तन में विश्वास करते हैं। सूफियों की अपनी एक अलग सूफी नृत्य शैली होती है, और हमारे यहाँ भरत-नाट्यम् और कथकली जैसे नृत्य हैं। नृत्य एक दिव्य कर्म है। राधा, कृष्ण, चैतन्य महाप्रभु, मीरा—सभी नृत्य किया करते थे।

अद्वैत दर्शन अपनी जगह ठीक है, लेकिन फिर कुछ प्रश्न उठते हैं। माना कि मैं ईश्वर से प्रेम करता हूँ, पर मेरा और ईश्वर का क्या सम्बन्ध है? यह सारी सृष्टि किसने बनाई? तब अद्वैत के अलावा एक अन्य दर्शन की आवश्यकता पड़ती है जो तीन चीजों में विश्वास रखता है—ईश्वर, जीव और सृष्टि। इसी दर्शन को संस्कृत में त्रैत कहा जाता है, और इसी को ईसाई धर्म का दर्शन कह सकते हो। ईसाई धर्म में मुख्य चीज है प्रार्थना और यही चीज मीराबाई, तुलसी या चैतन्य महाप्रभु की भक्ति में भी दिखलाई देती है।

एक और बात ध्यान देने योग्य है। किसी भी धर्म का विकास समाज की राजनैतिक परिस्थिति और भौगोलिक वातावरण से प्रभावित होता है। जहाँ एक ओर वेदान्त का उद्गम हिमालय के वनाच्छादित पर्वतों से उतरती नदियों के किनारे हुआ, ईसाई धर्म का जन्म गर्म, जलविहीन रेगिस्तान में हुआ। स्वाभाविक है कि कुछ फर्क तो पड़ेगा। सब चीज एक समान नहीं हो सकती। तुम कुल्लु-मनाली चले जाओ, वहाँ के पर्वतों में अलग तरह की प्रेरणा मिलेगी। यमुनोत्री-गंगोत्री चले जाओ, वहाँ नदी किनारे बैठ जाओ, अलग अनुभव होगा। किसी रेगिस्तान में जाओ जहाँ एक पेड़ तक नहीं दिखता, वहाँ का अनुभव अलग होगा। लोग भी अलग होंगे। ईसा मसीह के समय राजनैतिक परिस्थिति भी ठीक नहीं थी। यहूदी लोग रोमन साम्राज्य के गुलाम थे, बहुत गरीब थे। ईसा मसीह खुद रोमन सरकार के निशाने में आ गए।

दूसरी ओर वेदों और वेदान्त का जन्म ऐसे देश में हुआ जहाँ के ऋषि-मनीषी स्वतंत्र चिंतन कर सकते थे। उन्हें किसी चीज की चिंता नहीं थी। स्वाभाविक है कि ऐसे स्वतंत्र चिंतकों का दर्शन और शिक्षण अलग होगा। जब ईसा मसीह शिक्षा देते तो करुणा, प्रेम, मैत्री, सहनशीलता और क्षमा जैसे विषयों के बारे में बोलते। क्यों? इसलिए कि उस समय के समाज में इन सद्गुणों का अभाव था। लोग क्रूर थे, इसलिए उन्हें करुणा की शिक्षा देना जरूरी था। एक संत उसी चीज की शिक्षा देता है जो समाज में नहीं होती। ऐसा था वह समाज जिसमें ईसा मसीह ने अपना जीवन बिताया।

लेकिन वे इस समाज में बहुत समय नहीं रहे। जब उन्होंने इस्रायल छोड़ा तो पहले रोम पहुँचे, फिर वहाँ से इराक गए और क्रूसारोहण के तेरह-चौदह साल बाद

अपनी माँ के साथ काश्मीर आए। उनकी मृत्यु सूली पर नहीं हुई थी। चर्च भले ही इस बात को न माने, लेकिन अनेक विद्वानों ने इस बारे में किताबें लिखी हैं। जब मैं इटली में था तो कई लोग मुझे ये किताबें दिया करते थे।

ईसाई लोग तो क्रूसारोहण के पश्चात् ईसा मसीह के पुनरुज्जीवन में विश्वास करते हैं। तो क्या वह सत्य नहीं?

इसके लिए तुम्हें पुनरुज्जीवन की सही परिभाषा देनी होगी। आखिर यह एक शब्द ही तो है। जब मेरी मृत्यु होगी तो भारत में लोग यह नहीं कहेंगे कि स्वामीजी मर गए, बल्कि कहेंगे कि महासमाधि में लीन हो गए। इसी तरह उस समय के लोगों ने यह नहीं कहा कि सूली पर लटकाए जाने के बाद भी ईसा मसीह स्वस्थ हो गए, भले-चंगे हो गए, बल्कि कहा कि पुनर्जीवित हो गए। अभिप्राय इतना ही है कि सूली पर उनकी मृत्यु नहीं हुई, उन्हें वहाँ से ले जाया गया और उनका इलाज हुआ। कुछ समय वे इटली के रोम नगर में रहे, फिर इराक के कुर नामक स्थान में रहे और फिर तेरह-चौदह साल बाद अपमी माँ मरियम के साथ काश्मीर पहुँचे। श्रीनगर में उनकी मज़ार है, मैंने उसे देखा है। उनकी माँ की मृत्यु भी काश्मीर में हुई और वहाँ मरियम की मज़ार है। भारत के लोग इन्हीं तथ्यों को मानते हैं। जब तक मजहब मजहब है, चाहे वह यहूदी हो या ईसाई या इस्लाम, वह हमारा है, पर जब वह मजहब मजहब के अलावा कुछ और हो जाता है तो फिर हम उसे स्वीकार नहीं करते। मजहब को मजहब की तरह रहना चाहिये, उसे नेताओं के साथ साँठ-गाँठ नहीं करनी चाहिये। मजहब एक पवित्र चीज है, दूध की तरह, थोड़ी-सी खटाई पड़ने से फट जाता है।

– 18 नवम्बर 1997, रिखियापीठ

अनुशासन और सुसंस्कार

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

जो व्यक्ति समाज और संसार में रहते हैं उनकी प्रवृत्ति तो भोग की ही रहती है, और जब तक भोग की प्रवृत्ति रहती है तब तक मनुष्य का जीवन, मन और व्यवहार विक्षिप्त रहते हैं। इसके विपरीत है अनुशासन का जीवन, जिसकी शिक्षा हमलोगों को पूर्व काल में आश्रमों और गुरुकुलों में मिलती थी। जब लोग आश्रम या गुरुकुल जाते थे तो वहाँ पर एक साथ रहते थे, चाहे वह राजा का लड़का हो या रंक का। रामजी आश्रम गये, उसी प्रकार कृष्णजी भी गये, और वहाँ पर सभी लोगों के साथ रहे। वहाँ कोई ऊँच-नीच का भाव नहीं, सम्पन्नता और दरिद्रता का आभास नहीं, मैं राजा का बेटा हूँ या मैं रिक्शा चालक का बेटा हूँ, ऐसा कोई अभिमान नहीं और संताप नहीं। एक लक्ष्य से जुड़कर लोग अपनी शिक्षा को प्राप्त किया करते थे।

गुरु का यह जो सान्निध्य मिलता है और इसके अतिरिक्त गुरुकुलों या आश्रमों का जो एक वातावरण होता है वह मनुष्य को मजबूत बनाता है। थाईलैण्ड में आज भी परम्परा है कि राजा का बेटा हो या गरीब का बेटा हो, विवाह के पूर्व एक साल लड़के को बौद्ध भिक्षुक के रूप में रहना पड़ता है। थाईलैण्ड का जो राजा है उसका बेटा भी एक साल रहा। सिर मुड़ाया, भिक्षु का वस्त्र पहना, भिक्षाटन के लिये गया, आश्रम में रहा, जमीन पर सोया, टेलिविजन या इन्टरनेट नहीं देखा—एक साल तक उसने अनुशासन का जीवन व्यतीत किया। यह परम्परा आज भी उस देश में

है कि विवाह के पूर्व जवान लोग किसी बौद्ध मठ में जाकर एक साल सेवा देते हैं, शिक्षा ग्रहण करते हैं और संस्कार, संस्कृति, धर्म व न्याय के बारे में कुछ सीखते हैं। उसके बाद फिर समाज में वापस लौटते हैं।

हमारे देश में भी पूर्वकाल में ऐसी ही परिस्थिति थी, जब समाज के लोग अपने बच्चों को गुरुकुलों में भेजते थे। वहाँ पर बड़े-छोटे का कोई भेद-भाव नहीं था। सब समान हैं और अमान भी। जहाँ पर एक-सा वातावरण रहता है वहाँ पर मनुष्य स्वत: अमान हो जाता है, और जब अमान होता है तब फिर गुरु की शिक्षा को ग्रहण करता है, सोख लेता है। फिर वह शिक्षा उसके जीवन में संस्कार बनकर प्रकट होती है।

हमलोग अपने देश में इस चीज को भूल गये, लेकिन आज संसार और समाज में जो परिस्थिति है उसका एक ही तोड़ समझ में आता है—फिर से गुरुकुल की शिक्षा, गुरुकुल के संस्कार सबको प्राप्त हों और नई पीढ़ी से पुन: समाज के संगठन एवं संरचना को सुदृढ़ किया जाए, क्योंकि पुराने लोग बहुत कमजोर हैं, बुरा नहीं मानना। आप लोग तो हिम्मत भी नहीं रखते कि अपने बेटे से कहो, तुम गलत कर रहे हो। जब किसी में ऐसी हिम्मत है ही नहीं कि वह अपनों से कह सके वे गलत कर रहे हैं तो हम क्या संस्कार दे पायेंगे अपने घर में? आप ने अपने बच्चों को आखिर क्या संस्कार दिया है अपने घरों में? सुख-सुविधा प्रदान करना और संस्कार प्रदान करना, दोनों में अन्तर होता है। संस्कार प्रदान किया जाता है व्यवस्था और अनुशासन हेतु, जबकि सुख-सुविधा प्रदान की जाती है अपनी मनोकामना पूर्ण करने के लिये। आज के भारतीय समाज में बहुत-से ऐसे लोग हैं जिन्होंने सूर्योदय नहीं देखा है। बारह बजे सोते हैं, आठ बजे उठते हैं, समय कहाँ है सूर्य को उगते देखने का? जब तक जीवन में एक व्यवस्था और अनुशासन नहीं आता है समाज सुधरेगा नहीं, यह पक्की बात है।

महर्षि वेदव्यास ने भी अन्त में अपने हाथ उठाकर कहा था कि मैंने सब बातें कह दी हैं कि धर्म क्या है, अधर्म क्या है, न्याय क्या है, अन्याय क्या है, फिर भी कोई अच्छाई पर चलता नहीं। मतलब गुरु जनों को दिक्कत शुरू से रही है। महर्षि वेदव्यास के समय से कोई गुरु की बात को सुनता नहीं है। मरने के बाद सब पूजा करते हैं, लेकिन जब तक गुरु जिन्दा है उसकी बात पर कोई ध्यान नहीं देता। जरा सोचिये, महर्षि वेदव्यास को इतनी दु:खद बात कहने की क्या आवश्यकता थी? जिन्होंने वेदों, पुराणों और अन्य ग्रंथों को लिपिबद्ध करवाया, वे अन्त में निराश होकर कहते हैं कि मैंने तो दोनों हाथ उठा दिये। इसका मतलब यह परिस्थिति आदि काल से समाज में रही है।

जब यह परिस्थिति विकृत और विकराल रूप धारण कर लेती है तब समाज में संहार होता है और एक नये समाज की स्थापना होती है। लेकिन यह विकृति आती क्यों है? अपनी कमजोरी के कारण। विलायत में मनोवैज्ञानिकों ने शिक्षा विभाग को एक आवेदन दिया कि स्कूल की समय-सारिणी बदल दो। सबेरे स्कूल शुरू करने

के बजाय दिन में दस, ग्यारह, बारह बजे शुरू कर दो, क्योंकि बच्चे रात को सोते नहीं हैं, सब अपने बिस्तर पर फेसबुक, नेट, म्यूज़िक, फिल्म,यही सब देखते हैं। कोई ग्यारह बजे सोता है, कोई बारह बजे, कोई एक बजे। माता-पिता लापरवाह हैं, उन्हें बच्चों की कोई परवाह ही नहीं। मुझे तो यह समझ में नहीं आता कि माता-पिता बच्चों को जन्म ही क्यों देते हैं। केवल दूसरे बच्चों के साथ तुलना करने के लिये? अपने बच्चे की प्रतिभा या प्रयास का कोई माँ-बाप सम्मान नहीं करता, समर्थन नहीं देता, बल्कि हमेशा डांट पड़ती है, 'पढ़ो पढ़ो।' हमेशा आलोचना होती है कि यह पढ़ता नहीं है। हमेशा कहा जाता है कि तुम्हारे दोस्त तुम से ज्यादा नम्बर लाये हैं। जब माता-पिता का व्यवहार अपनी संतानों के साथ ऐसा होता है तो क्यों अपेक्षा रखते हो कि वह बड़ा होकर आपके लिये राम बने। वह राम नहीं, वह तो कंस या रावण बनेगा। इसमें गलती और दुर्बलता अभिभावक की है। अभिभावक स्वयं कमजोर हैं, जो करने योग्य आचरण है वह बच्चों को बतला नहीं पाते।

एक प्रयास है मुंगेर में और एक है रिखिया में कि बच्चों को नया संस्कार दिया जाए। यहाँ बच्चे अपना रिज़ल्ट लेकर आते हैं, क्योंकि हम ही सबकी पीठ ठोकते हैं। माता-पिता तो नहीं ठोकते, वे तो यही कहते हैं कम नम्बर आये। हम कहते हैं, बेटा तुमने अच्छा किया, इतना तो लाये हो, अगली बार दो नम्बर और ज्यादा लाना। मतलब थोड़ा-सा प्रोत्साहन, थोड़ा-सा सहारा, थोड़ा-सा प्रेम, इसी में उनको संस्कार मिलता है। लेकिन लोग इस बात को समझते नहीं। अगर कोई अच्छा काम करे, तो उसे भी बिगाड़ने का प्रयास करते हैं। यह बहुत ही अनुचित कार्य है अपने लोगों के साथ, अपने समाज, सभ्यता और संस्कृति के साथ। पता नहीं आप लोग समझ पाते हो कि नहीं। कहीं ऐसा न हो कि हम भी अन्तिम क्षण में दोनों हाथ उठाकर व्यास जी की भाँति बोलकर चले जायें। आज तक तो कोई नहीं सीखा है। हमने बहुत-सा प्रयास किया, लेकिन कोई कुछ सीखा नहीं। सीखने के लिए एक लगन की, एक सजगता की आवश्यकता होती है। लगन और सजगता के अतिरिक्त भक्ति की भी आवश्यकता है, क्योंकि भक्ति में जो प्रेम, जो भाव उत्पन्न होता है वही मनुष्य को मनुष्य के साथ जोड़ता है। वही मनुष्य को सज्जन बनाता है। आज दुर्जन नहीं, सज्जन बनने की आवश्यकता है। संसाराभिमुख नहीं, ईश्वराभिमुख होने की आवश्यकता है।

– 30 अगस्त 2017, पादुका दर्शन

योगा एवं *योगविद्या* प्रसाद

सन् 2013 में बिहार योग विद्यालय ने अपनी स्वर्ण जयन्ती मनाई, जिसका समापन अक्टूबर 2013 में आयोजित विश्व योग सम्मेलन के साथ हुआ। इस ऐतिहासिक सम्मेलन में यह स्पष्ट हो गया कि योग को नगर-नगर डगर-डगर पहुँचाने का संकल्प सफलतापूर्वक सम्पन्न कर लिया गया है। 50 वर्षों की अवधि में दुनियाभर के योग साधकों और योग प्रेमियों की मदद से प्राप्त यह उपलब्धि यौगिक पुनर्जागृति की द्योतक है।

विश्व योग सम्मेलन के पश्चात् बिहार योग विद्यालय के दूसरे अध्याय का श्रीगणेश हो गया है, जिसका लक्ष्य भावी पीढ़ियों के कल्याण के लिए स्वामी शिवानन्द जी और स्वामी सत्यानन्द जी की परम्परा से प्राप्त योग विद्या का संरक्षण और संवर्धन है।

इस दूसरे अध्याय में बिहार योग विद्यालय *योगा* और *योगविद्या* पत्रिकाओं को गुरु परम्परा के आशीर्वाद सहित प्रसाद स्वरूप प्रस्तुत कर रहा है। वर्त्तमान डिजिटल युग में योग विद्या के प्रभावी प्रचार-प्रसार हेतु *योगा* और *योगविद्या* पत्रिकाएँ अब पी.डी.एफ. फॉरमैट में डाउनलोड हेतु उपलब्ध हैं, तथा साथ ही IOS एवं Android प्लैटफार्मों पर नि:शुल्क एप्प के रूप में उपलब्ध हैं।

_योगा_ पत्रिका डाउनलोड करने के लिए–
http://www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/

_योगविद्या_ पत्रिका डाउनलोड करने के लिए–
http://www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

IOS प्लैटफार्म पर *योगा* एवं *योगविद्या*, दोनों पत्रिकाओं को पढ़ने के लिए इस एप्प को डाउनलोड करें–https://itunes.apple.com/us/developer/bihar-school-of-yoga/id1134424786

Android प्लैटफार्म पर *योगा* पत्रिका पढ़ने के लिए यह एप्प डाउनलोड करें – https://play.google.com/store/apps/details?id=net.biharyoga.yogapeeth.app.emag.android.yoga

Android प्लैटफार्म पर *योगविद्या* पत्रिका पढ़ने के लिए यह एप्प डाउनलोड करें – https://play.google.com/store/apps/details?id=net.biharyoga.yogapeeth.app.emag.android.yogavidya

***योगा* पत्रिका की पुरानी प्रतियों के संग्रह** को पढ़ने तथा उनमें किसी विषय को खोजने हेतु देखें–http://www.yogamag.net/archives.shtml

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2017
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

योगपीठ कार्यक्रम एवं योग विद्या प्रशिक्षण 2018

अगस्त 6-11	क्रिया योग यात्रा 1
	क्रिया योग यात्रा 2 एवं तत्त्व शुद्धि
अगस्त 20-25	क्रिया योग यात्रा 3 एवं तत्त्व शुद्धि 2
सितम्बर 17-23	राज योग यात्रा 1, 2 एवं 3
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-
बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
फोन : 06344-222430, 06344-228603 फैक्स : 06344-220169
वेबसाइट : www.biharyoga.net
✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।